॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ॥

अहिंसा परमो धर्मः

श्रीहरिदास शास्त्री

संस्थापकाध्यक्ष : श्रीहरिदास शास्त्री गोसेवा संस्थान

श्रीहरिदास निवास, पुराना कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ० प्र०

❖ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❖

अहिंसा परमो धर्मः

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन
न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण
सांख्य, मीमांसा, वेदान्त, तर्क, तर्क, न्याय, वैष्णवदर्शनतीर्थ,
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सङ्कलितोनुदिताश्च।
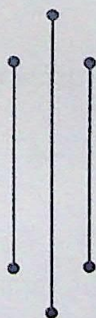
मुद्रक :
श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस
श्रीहरिदास निवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ.प्र.

प्रकाशक :

श्रीहरिदास शास्त्री

संस्थापकाध्यक्ष :

श्रीहरिदास शास्त्री गोसेवा संस्थान

श्रीहरिदास निवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

फोन : ०५६५-३२०२३२२, ३२०२३२५

प्रकाशन तिथि :

ॐ नित्यलीलाप्रविष्ट अष्टोत्तरशत्

श्रील विनोदबिहारी गोस्वामी महाराजजी का तिरोभाव महोत्सव

पौष द्वितीया कृष्णपक्ष

सम्वत् २०६६, श्रीगौरांगाब्द : ५२५

प्रथमसंस्करणम्

प्रकाशन सहयोग :

१००) रुपया मात्र

मुद्रक :

श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस

(श्रीहरिदास निवास)

पुरानी कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ॥

अहिंसा परमो धर्मः

"यतोऽभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः" अनादिकाल से आरम्भ करके आजतक लोगों के उन्नति के लिए जितने धर्मों का वर्णन मनीषियों ने किया है, उनमें एक वाक्यता नहीं है, कारण काल, देश, प्रकृति के अनुसार मर्यादा पालन के उद्देश्य से अधिकारी को लक्ष्य करके धर्म का प्रवर्तन किया गया है। उनमें सरल कठिन स्वल्पकालसाध्य दीर्घकालसाध्य नियम उपनियम विभिन्न व्रत प्रभृति का विधान होने के कारण धर्म का स्वरूप विभिन्न प्रकार दिखाई देता है।

युग-युग से धर्मोपासकगण कठिन अकठिन साधन क्रिया के द्वारा सिद्धि लाभ हेतु प्रयत्नरत हैं, किन्तु वर्तमान में कलियुग है, इस विषय में श्रीमद्भागवतपुराण माहात्म्य के वचनानुसार उन सब धर्मों का आचरण युग के अनुसार विहित है, कलियुगरूप दावानल से वे सब साधन भस्मीभूत हो गये हैं, इस कलियुग में सत्य दया शास्त्र विवेक विनष्ट हो गये हैं।

अतएव इस परिस्थिति में लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सरल उपाय क्या है? जो उपाय सर्वजनहित के लिए साधुजन सम्मत हो। यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि का अनुष्ठान अत्यन्त कठिन होने के कारण सब मनुष्यों के लिए पालन करना अत्यन्त कठिन है। पूर्व जन्मार्ज्जित संस्कार से ही श्रवण मनन निदिध्यासन क्रिया बन सकती है। स्वल्प आयु शास्त्रज्ञानहीन संस्कारहीन व्यक्ति के लिए फलप्राप्त करना सुलभ नहीं है। अतएव अल्पायु शास्त्रज्ञानहीन, संस्कार विहीन, विषम परिस्थिति प्राप्त मानव

के लिए विभिन्न धर्म, देशकाल परिस्थिति के अनुकूल, स्वल्पायास से आचरणीय अहिंसा व्रत आचरण, सुगम एवं प्रशस्त है।

अतएव वास्तविक सत्य यह है कि जबतक मानव हिंसा के प्रति अरुचि सम्पन्न नहीं होता, तबतक वास्तविक कल्याण प्राप्त करना असम्भव है। अहिंसा व्रत के लाभ क्या हैं – पतञ्जलि मुनि ने इस विषय में कहा है–

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैर त्यागः इति।"

पुराणों में कथित है – शाश्वत वैरभाव सम्पन्न सिंह व्याघ्र प्रभृति निज-निज हिंसा वृत्ति को छोड़कर गौ हरिण के साथ वैरभाव को छोड़कर वन में मुनिगण के आश्रम में विचरण करते रहते हैं।

यह सब प्रभाव अहिंसा व्रत का ही है, जब अहिंसा व्रत से हिंसक पशु आदि का परिवर्तन होता है, तब अहिंसा व्रत से मानव का भी परिवर्तन अवश्य होगा।

अनेक काल पर्यन्त पराधीन भारतवर्ष को स्वतन्त्र करने के लिए महात्मा गान्धी ने भी अहिंसा व्रत का अनुष्ठान किया था। यह सफल भी हुआ। गान्धीजी के चले जाने के बाद अशान्ति पिशाची व्यक्ति समाज ग्राम नगर देश को ग्रास करने के लिए उत्साहित है। इससे मुक्त होने के लिए सत्य अहिंसा ही एकमात्र सबल पन्था है। **"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"** इस मन्त्र का स्मरण करने से पत्नी पति, पति पत्नी, भाई-भाई, सेवक स्वामी, स्वामी सेवक, शासक प्रजा, प्रजा शासक, देश ग्राम नगर के प्रति हिंसा नहीं करेंगे। अपनी रक्षा, परिजनों की रक्षा, गृह-सम्पद की रक्षा, राजा प्रजा की रक्षा, भारत भूमि की रक्षा की चिन्ता भी इससे विदूरित होगी। इसलिए शान्ति का उपाय अहिंसा ही महान व्रत है।

अहिंसा क्या है? इसका ज्ञान एवं प्रचार कैसे हो सकता है?

यहाँ पर शास्त्र ही प्रमाण है। शरीर से प्राण को हटाना मात्र ही हिंसा

नहीं है। किन्तु मनसा वाचा कर्मणा किसी प्रकार, किसी को, कहीं पर कष्ट देना भी हिंसा है। अतएव शास्त्र एवं आप्तवाक्य के द्वारा शिक्षण संस्थानों में अहिंसा का शिक्षा प्रदान करना आवश्यक है। धर्मशास्त्र पुराण इतिहास धर्म वर्णन प्रसङ्ग में अहिंसा का ही उपदेश देते है। जिससे परिवार ग्राम नगर यहाँ तक कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में अहिंसा व्रत का प्रचार व प्रसार हो। अहिंसा व्रत के द्वारा ही सब प्रकार धर्म का संरक्षण सम्भव है। जिससे कोई भी सम्प्रदाय, समाज अहिंसा व्रत का विरोधी न बने। आजकल जहाँ कहीं पर दुःखद स्थिति सुनने में आती है, वे सब हिंसामूलक हैं। इसलिए अहिंसाव्रत का राष्ट्रीय नैतिक कर्तव्य के रूप में पालन करना अत्यावश्यक है।

प्राचीन काल में जहाँ कहीं पर सुखद परिस्थिति का अनुभव होता था, उन सबके मूल में अहिंसा ही रही। क्रिया कलाप बहुल धर्म समूह अहिंसा व्रत की अपेक्षा जटिल एवं कठिन हैं, अहिंसा व्रत का अनुष्ठान सर्वत्र सर्वदा सहज एवं सरल है।

अन्य धर्मों का विस्तार जिस प्रकार शास्त्रों में है उस प्रकार अहिंसा व्रत का विस्तार नहीं है, कारण यह मनोधर्म है। किसी कार्य से जिस प्रकार अपने को अनुभव होता है, उस प्रकार दूसरे के कष्ट को अनुभव करने से ही अहिंसा व्रत का अनुष्ठान सफल होता है। अहिंसा केवल बाहर ही सुखकर नहीं है किन्तु सर्वत्र विजयप्रद, शान्तिप्रद है, इससे परिवारजन के मध्य में पारस्परिक एकता अनुकूलता का वातावरण होता है, जिससे सर्वत्र सर्वदा सुखकर वातावरण होता है।

अहिंसा के द्वारा ही नैतिक देशिक क्षेत्रीय प्रान्तीय विवाद का सुसमाधान होता है। वस्तुतः अहिंसा व्रत से ही **"बसुधैव कुटुम्बकम्"** कथानक सफल होता है। यदि सर्वत्र राष्ट्रधर्मरूप से अहिंसा व्रत का प्रवर्तन होता है, तब समस्त विवाद स्वल्प समय में ही मिट सकता है। हिंसा के द्वारा किसी का भी स्थायी समाधान नहीं होता है। हिंसा के द्वारा ही समस्त भौतिक सुख क्षण स्थायी होते हैं। अहिंसा के द्वारा प्राप्त सुख सम्पद स्थायी एवं सर्वत्र सुखद होते हैं।

वेद ही समस्त शास्त्रों का मूल मंत्र है। मनन ही मन्त्र होता है। मननकारी व्यक्ति ही सुखी होता है। अतएव वेद और मन्त्र पर्यायवाची शब्द हैं। एक वेद का विभाजन चार प्रकार से भगवान वेद व्यास ने किया है। उससे धर्मशास्त्र का उद्भव हुआ है। इतिहास पुराण का वर्णन भी उसी से हुआ है। ये सब लोक कल्याण के लिए हुए हैं। वेद परब्रह्म का निःस्वास स्वरूप है। **"तस्य निःस्वसितं वेदाः"** इस वचन से प्रमाणित होता है।

श्रीमद्भागवत पुराण के वचन के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ही पूर्ण ब्रह्म हैं। **"कृष्णस्तु भगवान् स्वयं"** इस भागवतीय वचन के अनुसार परब्रह्म श्रीकृष्ण जगत में प्रकट होकर धर्म मर्यादा पालन की प्रक्रिया का प्रवर्तन किये हैं। **"ईश्वराणां वचः सत्यं, तथैवाचरितं क्वचिद्"** इस कथन के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेशरूप पुराण इतिहास धर्मग्रन्थों में लिखित वाणी समूह निश्चय ही लोकहितकारी हैं। अतएव शास्त्रोक्त अहिंसा ही महामन्त्र है।

सर्वत्र सर्वदा सबके लिए एक ही धर्म है – अहिंसा।

याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लेख है –(१-५-१२२)

"अहिंसा सत्यमस्त्येयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥"

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, शौच, इन्द्रिय संयम, दान, दम, अन्तःकरण का संयम, मन बुद्धि अहंकार का संयम, प्राणियों के प्रति दया और अपराधी व्यक्ति के प्रति भी क्षमा, ये सभी के लिए सामान्यरूप से धर्म का साधन हैं।

गरुड़ पुराण (१-९६-२९) में कथित है –

"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय संयमः।
दमः क्षमाऽऽर्जवं दानं सर्वेषां धर्म साधनम्॥"

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, शौच शुद्धि, इन्द्रिय संयम, दम, मन बुद्धि का संयम, क्षमा, सरलता, दान ये सभी के लिए धर्म का साधन हैं।

महाभारत १३/ अनुगीता पर्व ५०/२-३ में उक्त है –

"अहिंसा सर्वभूतानामेतत् कृत्यतमं मतम्।
एतत् पदमुद्विग्नं वरिष्ठं धर्म लक्षणम्॥"

सब प्राणियों के लिए अहिंसा ही सर्वोत्तम कर्त्तव्य है, ऐसा माना गया है। यह सर्वश्रेष्ठ उद्वेग रहित स्थिति है, और धर्म का मुख्य लक्षण है।

इष्टाचारो दमोऽहिंसा दानं स्वाध्याय कर्म च।
अयञ्च परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्॥ (ग.पु. १/९३/८)

आचरण - लोकमान्य, जितेन्द्रियता दम, अहिंसा, दान, स्वाध्याय, चित्तवृत्ति निरोधरूप योग के द्वारा आत्मसाक्षात्कार, ये सब उत्कृष्ट धर्म हैं।

महाभारत १३-१२-१९ में उक्त है –

"अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा।
आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्म लक्षणम्॥"

अहिंसा, सत्य, अक्रोध, कोमलता, दया, इन्द्रिय संयम और सरलता ये सब धर्म के स्थायी लक्षण हैं।

अध्यात्म पुराण में लिखित है –

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम्॥

वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रिय संयम, अहिंसा, गुरुसेवा ये सभी प्रवृत्तिपरक धर्म परम निःश्रेयसकारी हैं।

वायु पुराण के १५/२-३ में लिखित है –

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय संयमः।
दानं दया च क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिता॥

शुभा सत्या च मधुरा वाङ् नित्यं सत् क्रिया रतिः।
सदाचार निषेवित्वं परलोक प्रदायकाः॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय चोरी न करना, शौच, शुद्धि, इन्द्रिय संयम, न, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, निरभिमानिता, शुभ सत्य मधुर वाणी, सदा सत्कार्य आसक्ति, सदाचार सेवन, ये सभी धर्म परलोक को सुधारने वाले हैं।

वायु पुराण के ११/२३-२४ में उक्त है –

स्वाध्यायो ब्रह्मचर्यं च दानं यजनमेव च।
अकार्पण्यमनायासो दयाऽऽहिंसा क्षमादयः॥
जितेन्द्रियत्वं शौचं च मांगल्यं भक्तिरच्युते।
शंकरे भास्करे देव्यां धर्मेऽयं मानवः स्मृतः॥

स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दान, यज्ञ, उदारशीलता, अकृपणता, थकान [भव न करना, धार्मिक कार्यों में उत्साह, दया, अहिंसा, क्षमा, जितेन्द्रियता, व अन्दर बाहर शुद्धि, मङ्गलमयता एवं अच्युत भगवान् में, शंकर में, सूर्य देवी में भक्ति होना – ये सभी मानवीय धर्म माने गये हैं।

मत्स्य पुराण में लिखित है– (१४३/३१-३२)–

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च, दमो भूतदया शमः।
ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम्॥

ईर्ष्याहीनता, निर्लोभता, इन्द्रियनिग्रह, जीवों पर दयाभाव, मानसिक रता, ब्रह्मचर्य, तप, पवित्रता, करुणा, क्षमा और धैर्य– ये सनातनधर्म के ही हैं, जो बड़ी कठिनता से प्राप्त किये जा सकते हैं।

मार्कण्डेय पुराण के २८/३१-३२ में लिखित है–

सामान्यमन्य वर्णानामाश्रमाञ्च मे श्रृणु।

सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा
आनृशंस्यमकार्पण्यं सन्तोषश्चाश्रमेषु च॥

राजकुमार अलर्क की माता मदालसा का कथन है– अन्य वर्णों तथा अन्य आश्रमों के जो सामान्य धर्म हैं कह रही हूँ- सत्य, शौच, अहिंसा, अनसूया, क्षमा, दया, अदैन्य और सन्तोष ये सभी वर्णों और आश्रमों के लिए सामान्य धर्म हैं।

देवी भागवत के ६/११/२१,२२ में लिखित है–

सत्यं दया तथा दैन्यं स्वदारागमनं तथा।
अद्रोह सर्वभूतेषु समता सर्व जन्तुषु॥
एतत् साधारणं धर्मम्।

सभी प्राणियों के प्रति अद्रोह 'अहिंसा', सभी प्राणियों के प्रति समता दृष्टि, सत्यभाषण, दान, सपत्नीव्रत – ये सर्व सामान्य सभी के लिए आचरणीय धर्म है।

देवी भागवत के ६/१२/२१,२२ में उक्त है–

अहिंसा सत्यमस्त्येयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
स्वधर्म पालनं राजन् सर्वतीर्थ फलप्रदम्॥

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, शौच, इन्द्रियनिग्रह और स्वधर्म का पालन – इनसे वही फल प्राप्त होता है जो समस्त तीर्थों के सेवन से प्राप्त होता है।

गरुड़ पुराण के १/२०५/२२ में लिखित है–

अहिंसा सत्यवादश्च सत्यं शौचं दया क्षमा।
वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यं धर्म उच्यते॥

अहिंसा, सत्यभाषण, सत्यनिष्ठा के साथ रहना, आन्तरिक पवित्रता, दया, क्षमा ये समस्त वर्णों और वेशधारियों के लिए सामान्य धर्म हैं।

महाभारत के अनुगीता पर्व ९१/३३-३४ में उक्त है–

एषधर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमक्रोधो धृतिः क्षमा।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत् सनातनम्॥

यही धर्म है, यही महान योग है। दान, प्राणियों के प्रति दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, करुणा, धृति, क्षमा ये सनातन धर्म के सनातन मूल हैं।

महाभारत के १३/१६२/२३ में लिखित है–

अहिंसा सत्यमक्रोधो दानमेतत् चतुष्टयम्।
अजातशत्रो सर्वस्व धर्म एष सनातनः॥

युधिष्ठिर के प्रति भीष्म का कथन है – अहिंसा, सत्य, अक्रोध, दान - इन चारों का सदा सेवन करो। यह सनातन धर्म है।

गरुड़ पुराण के १/२२९/१४ में लिखित है –

कर्म्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
हिंसा विरामको धर्म्मो ह्यहिंसा परमं सुखम्॥

मन वचन कर्म से सर्वदा सभी प्राणियों की हिंसा से निवृत्त होना परम सुखकारी अहिंसा धर्म है।

महाभारत के १२/१६२/२१ में लिखित है–

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥

मन वाणी और क्रिया के द्वारा सभी प्राणियों के साथ कभी द्रोह न करना तथा दया, दान – ये सभी अहिंसात्मक कार्य श्रेष्ठ पुरुषों के सनातन धर्म हैं।

पद्म पुराण के ५/८९/८-१० में उक्त है–

ब्रह्मचर्येण सत्येन तपसा नित्य वर्त्तनं।
दानेन नियमैश्चापि क्षमाशौचेन वल्लभ॥
अहिंसया च शक्त्या वाऽस्तेयेनापि प्रवर्त्तते।
एतैर्दशभिरंगैश्च धर्ममेवं प्रसूयते।
सम्पूर्णो जायते कर्म अंगैर्गर्भो यथोदरेः॥

जिस प्रकार नारी के उदर में गर्भ विविध अङ्गों से परिपूर्ण होकर जन्म लेता है। उसी प्रकार धर्म अङ्गों से परिपूर्ण होकर मूर्त्तिमान होता है। ये अङ्ग हैं– ब्रह्मचर्य, सत्य, तप, नित्य कर्म, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा व अस्तेय।

पद्मपुराण के २/१२/४६-४८ में उक्त है–

ब्रह्मचर्येण सत्येन मखपञ्चकवर्त्तनैः।
दानेन नियमैश्चापि क्षमा शौचेन वल्लभ।
अहिंसया सुशक्त्या च अस्तेयेनापि वर्त्तनैः।
एतैर्दशभिरङ्गैस्तु धर्ममेव प्रपूरयेत्॥

विदुषी ब्राह्मणी सुमना का पति सोमशर्मा को कथन – ब्रह्मचर्य, सत्य, पञ्चयज्ञ, दान, नियम, क्षमा, शौच, शुद्धि, अचौर्य, सुशक्ति आत्मशक्ति, दम, अहिंसा – ये धर्म के दस अङ्ग हैं, इससे धर्म को परिपूर्ण करें अर्थात् इन सभी के अनुष्ठान से ही धर्म का सर्वाङ्गरूप से अनुष्ठान हो पाता है।

महाभारत के १२/१०९/१२ में लिखित है–

अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यादहिंसा सम्पृक्त स धर्म इति निश्चय॥

प्राणियों के प्रति हिंसा न हो, इसी के लिए धर्म का उपदेश किया गया है। अतः जो अहिंसा से युक्त हो वही धर्म है। ऐसा धर्मात्माओं का निश्चय है।

महाभारत के ८/६९/५७ में लिखा है–

यत् अहिंसा संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।
अहिंसार्थाय भूतानां धर्म प्रवचनं कृतम्॥

सिद्धान्त यह है कि जिस कार्य में हिंसा न हो वही धर्म है। महर्षियों ने प्राणियों की हिंसा न होने देने के लिए ही अर्थात् अहिंसा के प्रचार प्रसार के लिए ही उत्तम धर्म का प्रवचन किया है।

अहिंसा ही परम तपस्या है, इस विषय में महाभारत के १२/१९/१४ में लिखित है–

अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो नृणां।
एतत् तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम्॥

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना, सत्य बोलना, क्रूरता को त्याग देना, मन और इन्द्रिय का संयम करना तथा सबके प्रति दयाभाव बनाये रखना, इन्हीं को धीर पुरुषों ने तप माना है। केवल शरीर को सुखाना ही तप नहीं है।

महाभारत के १२/१९१/१५ में लिखित है–

अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो नृणां।
एतत् तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम्॥

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना, सत्य बोलना, क्रूरता को त्याग देना, मन और इन्द्रिय का संयम करना तथा सबके प्रति दयाभाव बनाये रखना, इन्हीं को धीर पुरुषों ने तप माना है। केवल शरीर को सुखाना ही तप नहीं है।

महाभारत के १२/१९/१५ में उक्त है–

अहिंसा सत्यं अक्रोधः सर्वाश्रम गतं तपः॥

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना, सत्य बोलना, मन में क्रोध न आने देना – ये सभी आश्रमों से सम्बन्धित **"तप"** हैं।

अहिंसैव परं तपः।

पद्मपुराण के ३/३१/२७ में लिखित है –

अहिंसा ही परम तपस्या है।

परोपघाती हिंसा च पैशून्यमनृतं तथा।
एतान् संसेवते यस्तु तपस्तस्य प्रहीयते॥

नारदीय पुराण के १/४४/१२ में लिखित है –

जो व्यक्ति दूसरों पर प्रहार करता है, उनका बध करता है, असत्य बोलता है तथा दूसरों की चुगली करता है, उसका तप क्षीण हो जाता है।

अहिंसस्य तपोऽक्षय्यमहिंस्त्रो यजते सदा।

महाभारत के १३/११६/३१ में उक्त है–

जो हिंसा नहीं करता है, उसकी तपस्या अक्षय होती है।

महाभारत के १४/४३/२१ में उक्त है–

"हिंसा चाधर्मलक्षणम्"

हिंसा तो अधर्म ही है।

नारदीय पुराण के २/१०/९ में लिखित है–

हिंसया वर्तमानस्थ व्यर्थो धर्मो भवेदिति।
कुर्वन्नपि वृथा धर्मान्यो हिंसामनुवर्त्तते॥

हिंसा में जीने वाले व्यक्ति का धर्माचरण व्यर्थ हो जाता है, इसलिए जो भी हिंसा का आचरण करता है, वह धर्माचरण को व्यर्थ करता है।

नारदीयपुराण २/१०/९ में उक्त है –

हिंसया संयुतं धर्ममधर्मं च विदुर्बुधाः।

हिंसा से समन्वित धर्माचरण को विद्वानों ने अधर्म ही कहा है।

स्कन्दपुराण के १/२/४१/२० में उक्त है–

अभक्ष भक्षणं हिंसा मिथ्या कामस्य सेवनम्।
परस्वानामुपादानं चतुर्द्धा कर्म कायिकम्॥

हिंसा, अभक्ष भक्षण, काम-भोगादि का अमर्य्यादित सेवन तथा दूसरे का धन हड़प लेना – ये चार कार्य शारीरिक पाप हैं।

महाभारत के ३/३३/३३ में उक्त है –

प्राणियों का प्राणहरणरूप हिंसा कार्य्य अधर्म स्वरूप ही है।

अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्म है, हिंसा अहितकारी व अधर्म है।

परमधर्म के रूप में अहिंसा प्रतिष्ठित है।

महाभारत के ३/२०७/७४ में लिखित है –

"अहिंसा परमो धर्मः।"

अहिंसा परम धर्म है।

स्कन्दपुराण में उक्त है – अहिंसा परम धर्म है।

महाभारत के १३/११५/२३ में उक्त है –

अहिंसा परमो धर्मः, तथाऽहिंसा परं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं, यतो धर्मः प्रवर्त्तते॥

अहिंसा परम धर्म है, यही परम तप है और यही परम सत्य है क्योंकि अहिंसा से अर्थात् उसी के आधार पर धर्म का प्रवर्त्तन अर्थात् अस्तित्व होता है।

स्कन्द पुराण में उक्त है २६/६४ –

अहिंसा परमो धर्मः अहिंसा च परं तपः।
अहिंसा परमं ज्ञानम् अहिंसा परमं फलम्॥

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा ही परम तप है, अहिंसा परम ज्ञान है। और अहिंसा ही सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ अर्थात् फल है।

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड ६/६४/६३-६४ में उक्त है –

अहिंसा परमो धर्म इति वेदेषु गीयते।
दया दानं दम इति सर्वत्र हि श्रुतं मया॥
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन कार्यं वै महतामपि॥

अहिंसा परम धर्म है, ऐसा वेदों में कहा है, दान दया दम इनके महत्व को भी मैने सुना है, इसलिए सभी तरह से महान् लोकों के द्वारा सेवनीय अहिंसा का आचरण करना चाहिए।

नारदीयपुराण में लिखित है २/१०/७ –

अहिंसा परमो धर्मः पुराणे परिकीर्त्तितः।

पुराणों में अहिंसा को परमधर्म सर्वोत्कृष्ट धर्म के रूप में वर्णित किया गया है।

महाभारत के ८/६९/२३ में वर्णित है–

प्राणिनामबधस्तात सर्वज्यायान् मतोमम।

प्राणियों की हिंसा न करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

पद्मपुराण के १/१५/३७६ में उक्त है –

यथा नाग पदे अन्यानि पदानि पदगामिनाम्।
सर्वाण्येवापि धीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे॥
एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपि धीयते।
अमृतः स नित्यं वसति यो हिंसा न प्रपद्यते॥

जैसे पैरों के द्वारा चलने वाले अन्य प्राणियों के सम्पूर्ण पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समा जाते हैं, उस प्रकार समस्त धर्म और अर्थ अहिंसा में अन्तर्भूत हैं। जो किसी की भी हिंसा नहीं करता, वह सदा अमृत, जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर निवास करता है।

पद्मपुराण के ३/३१/३७ में लिखित है –

प्रविशन्ति यथा नद्यः समुद्रमृजुवक्रगाः।
सर्वेधर्मा अहिंसायां प्रविशन्ति तथा दृढ़म्॥

जैसे टेढ़ी-मेढ़ी चलने वाली सभी नदियां समुद्र में प्रविष्ट हो जाती हैं, वैसे ही सभी धर्म अहिंसा में समाविष्ट हो जाते हैं – यह निश्चित है।

महाभारत के १३/११६/२८ में उक्त है–

अहिंसा परमो धर्मः, तथाऽहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानम्, अहिंसा परमं तपः॥

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तपस्या है।

महाभारत के १२/२६६/६ में उक्त है–

तस्मात् प्रमाणतः कार्य्यो धर्मः सूक्ष्मो विजानता।
अहिंसा सर्वभूतेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता॥

विज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह वैदिक प्रमाण से धर्म के सूक्ष्म स्वरूप का निर्णय करे। सम्पूर्ण भूतों के लिए जिन धर्मों का विधान किया गया है, उनमें अहिंसा ही सबसे बड़ी मानी गयी है।

महाभारत के १३/११६/२९ में उक्त है –

अहिंसा परमो यज्ञः, तथा अहिंसा परं फलम्।
अहिंसा परमं मित्रम्, अहिंसा परमं सुखम्॥

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम उत्कृष्ट फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है।

पद्मपुराण ३/३१/२७ में लिखित है –

अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसैव परं तपः।
अहिंसा परमं दानं, इत्याहुर्मुनयः सदा॥

अहिंसा परम धर्म है, परम तप है, परम दान है, ऐसा कहना सदैव मुनियों का है।

महाभारत के १२/२६२/३० में लिखित है –

न भूतानामहिंसाया ज्यायान् धर्मोऽस्ति कश्चन।

प्राणियों की हिंसा न करने से जिस अहिंसा धर्म की सिद्धि होती है, उससे बढ़कर महान् धर्म कोई नही है।

कूर्म्मपुराण के २/११/१५ में उक्त है–

अहिंसायाः परो धर्मो नास्त्यहिंसा परं सुखम्।

अहिंसा से बढ़कर दूसरा कोई न तो परम धर्म है और न ही उससे बढ़कर कोई कार्य परम सुख को देने वाला है।

पद्मपुराण के २/६९/१, २ में भगवान शिव ने कहा है -

अथ धर्मः शिवेनोक्ताः शिवधर्मागमोत्तमाः।
हिंसादि दोष निर्म्मुक्तः क्लेशायास विवर्ज्जितः।
सर्वभूत हिताः शुद्धाः सूक्ष्मायास महत् फलाः॥

भगवान् शिव ने धर्मों का कथन किया है, और वे धर्म शिव-धर्मशास्त्रों में प्रमुखता से वर्णित हैं। ये धर्म हिंसा आदि दोषों से सर्वथा रहित हैं, इनके अनुष्ठान में क्लेश नहीं होता है, ये सभी प्राणियों के लिए हितकारी हैं, दोषरहित होने से शुद्ध हैं तथा थोड़े ही परिश्रम से महान् फल को देने वाले हैं।

स्कन्दपुराण के १/३/११/६९ में उक्त है –

आराध्यते महादेवः सर्वदा सर्वदायकः।
जीवहिंसा न कर्त्तव्या विशेषेण तपस्विभिः॥

सबकुछ देनेवाले शिव की आराधना करनी चाहिए। इस धर्म के आराधक तपस्वियों के द्वारा जीव हिंसा विशेषरूप से वर्जनीय है।

पद्मपुराण के २/६/९/६५ में उक्त है –

ज्ञान ध्यान सुपुष्पाढ्याः शिवधर्माः सनातनाः।
तथाऽहिंसा क्षमा सत्यं ह्रीः श्रद्धेन्द्रिय संयमः।
दानमिज्या तपो ज्ञानं दशकं धर्म लक्षणम्॥

शिवधर्म सनातन है तथा ज्ञान एवं ध्यान रूपी पुष्पों से परिपूर्ण है। शिवधर्म के दश प्रकार के साधन इस प्रकार हैं – १- अहिंसा, २- क्षमा, ३- सत्य, ४- ह्री, ५- श्रद्धा, ६- इन्द्रिय संयम, ७- दान, ८- यज्ञ, ९- तप, १०- ज्ञान आत्मज्ञान।

अहिंसा से समृद्ध देश में ही रहना है। महाभारत के १२/३४०/८७-८९ में लिखित है –

एक पाद स्थिते धर्मं यत्र क्वचन समिति।
कथं कर्त्तव्यमस्माभिर्भगवंस्तद् वदस्व नः॥
यत्र वेदाश्च यज्ञाश्च तपः सत्यं दमस्तथा।
अहिंसा धर्म संयुक्ताः प्रचरेयुः सुरोत्तमाः।
स वो देशः सेवितव्यो मा वोऽधर्मः पदा स्पृशेत्।

देवों और महर्षियों का भगवान् से प्रश्न इस प्रकार है– भगवन्! जब कलियुग में सर्वत्र धर्म का एक ही चरण रहेगा तब हमें क्या करना होगा? यह बताइये। भगवान् का उत्तर – जहाँ अहिंसा - धर्म के साथ वेद, यज्ञ, तप, सत्य, इन्द्रिय संयम प्रचलित हों, उसी देश का तुम्हें सेवन करना चाहिए। ऐसा

करने से तुम्हें अपने एक पैर से भी अधर्म नहीं छू सकेगा। अर्थात् कलियुग में वही स्थान प्रदेश या देश राष्ट्र निवास के योग्य है, जहाँ अहिंसा धर्म का आचरण दृष्टिगोचर होता है, ऐसे राष्ट्र में निवास करने से कलियुग के दुष्प्रभाव से सुरक्षित रहा जा सकता है।

अहिंसा ही सात्विक गुण है। महाभारत के १२/३०१/१४, २० में कथित है -

अकार्पण्यमसंरम्भः क्षमा धृतिरहिंसता।
समता सत्यमानृण्यं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
सर्वभूत दया चैव सत्व स्थैते गुणाः स्मृताः॥

दीनता का अभाव, अकार्पण्य, क्रोध का अभाव, असंरम्भ, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, ऋण से रहित होना, मृदुता, लज्जा, अचंचलता, परोपकार और सम्पूर्ण प्राणियों पर दया- ये सब सात्विक उत्तम गुण बताये गये हैं।

महाभारत के ५/२४५/२० में उक्त है -

अहिंसकः समः सत्यो धृतिमान् नियतेन्द्रियः।
शरण्यः सर्वभूतानां गतिमाप्नोत्यनुत्तमाम्॥

जो व्यक्ति अहिंसक, समदर्शी, सत्यवादी, धैर्य्यवान, जितेन्द्रिय और सम्पूर्ण प्राणियों को शरण देने वाला होता है, वह अत्यन्त उत्तम गति पाता है।

महाभारत के १२/२७७/२७-२८ में लिखित है -

यो न हिंसति सत्वानि मनोवाक्कर्महेतुभिः।
जीवितार्थापनयनैः पाणिभिर्न स बद्ध्यते॥

जो व्यक्ति मन, वाणी, क्रिया तथा अन्य कारणों द्वारा किसी भी प्राणी की जीविका का अपहरण करके उसकी हिंसा नहीं करता, उस अहिंसक व्यक्ति को दूसरे प्राणी भी बध या बन्धन के कष्ट में नहीं डालते।

नारदीय पुराण में उक्त है - (१/१५/१३६) -

अनसूया ह्यहिंसा च सर्वेष्येते हि पापहा।

परदोष दर्शन की अप्रवृत्ति तथा अहिंसा ये पाप को नष्ट करती है।

महाभारत के ३/२०७/७-८ में उक्त है -

न्यायोपेता गुणोपेताः सर्वलोक हितैषिणः।
सन्तः सर्ग जितः शुक्लाः सन्निविष्टाश्च सत्पथे॥
सर्वभूत दयावन्त स्ते शिष्टाः शिष्टसम्मताः॥

जो न्याय परायण, सद्गुण सम्पन्न, सब लोगों का हित चाहने वाले, हिंसारहित और सन्मार्ग पर चलने वाले हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष स्वर्ग पर विजय प्राप्त करते हैं। जो सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखते हैं वे ही शिष्ट पुरुष माने गये हैं।

महाभारत के ३/२०७/९१-९३ में लिखित है -

अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यमथार्जवम्।
अद्रोही नाभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा दमः शमः॥
धीमन्तो धृतिमन्तश्च भूतानामनुकम्पकाः।
अकामद्वेष संयुक्तास्ते सन्तो लोकसाक्षिणः॥

जो अहिंसा, सत्यभाषण, कोमलता, सरलता, दया, अद्रोह, अहंकार का त्याग, लज्जा, सहनशीलता, इन्द्रियनिग्रह, शान्ति, धैर्य्य - इन्हें धारण करते हैं, और समस्त प्राणियोंपर अनुग्रह करते हैं वे ही सन्त सज्जन सम्पूर्ण लोकों के लिये प्रमाणभूत अर्थात् आदर्श स्वरूप होते हैं।

योग दर्शन में भी कथित है -(२/३५) -

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैर त्यागः।

योगी में अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस योगी के समीप आने पर, परस्पर सभी प्राणी अपनी जन्मजात शत्रुता का परित्याग कर देते हैं।

अर्थात् जाति, देश, काल, समय की सीमा से ऊपर उठकर अहिंसा का पालन करने वाले योगी में जब यह अहिंसा की भावना दृढ़ स्थिति को प्राप्त कर लेती है, तब उस योगी के समीप में सहज व स्वाभाविक विरोध वाले सर्प-नेवला, गज-सिंह इत्यादि जीव भी वैर व द्वेष भाव को छोड़कर मित्रभाव से विचरण करते हैं।

विष्णुधर्मपुराण के ३/२६८/३-५ में लिखित है -

दाक्षिण्यं रूप लावण्यं सौभाग्यमणि चोत्तमम्।
धनं धान्यमथारोग्यं धर्मं विद्यां तथा स्त्रियः॥
राज्यं भोगांश्च विपुलात् ब्राह्मण्यमपि चेप्सितम्।
अष्टौ चैव गुणान् वापि दीर्घं जीवित मे वच।
अहिंसकाः प्रपद्यन्ते यदन्यदपि दुर्लभम्॥

१. दाक्षिण्य चातुर्य्यादि, २. रूप लावण्य, ३. उत्तम सौभाग्य, ४. धन, धान्य, आरोग्य, धर्म, ५. विद्या व स्त्रियां, ६. राज्य, ७. विपुल कामभोग, ८. अभीप्सित ब्राह्मणत्व, इन आठ गुणों को, दीर्घ जीवन को, अन्य दुर्लभ पदार्थों को अहिंसक प्राप्त कर लेता है।

विष्णुधर्म्मोत्तर पुराण के २/१२२/१६ में लिखित हे -

येषां न कश्चित् त्रसन्ति, त्रस्यन्ति न च कस्यचित्।
येषामात्मसमो लोको दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

जो न किसी अन्य को त्रास (पीड़ा) देते हैं, और न ही किसी से त्रस्त होते हैं। संसार को आत्मतुल्य दृष्टि से देखने वाले वे लोक दुर्गम संकटों को पार कर लेते हैं।

विष्णुधर्मपुराण के ३/२६८/१ में कथित है -

अहिंसा सर्वधर्माणां धर्मः पर इहोच्यते।
अहिंसया तदाप्नोति यत् किञ्चिन्मनसेप्सितम्॥

सभी धर्मों में श्रेष्ठ धर्म अहिंसा कही जाती है। इसके द्वारा व्यक्ति अपना सबकुछ अभीप्सित प्राप्त कर सकता है।

महाभारत के १३/११६/३१-३२ में उक्त है-

अहिंस्त्रः सर्वभूतानां यथा माता यथा पिता।
एतत् फलमहिंसाया भूयश्च कुरुपुङ्गवः।
न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि॥

हिंसा न करने वाला मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों के माता-पिता के समान है। ये सब अहिंसा का फल है। यही क्या, अहिंसा का तो इससे भी अधिक फल है। अहिंसा से होने वाले लाभों या गुणों का तो सौ वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

महाभारत के २/१०९/३१ में लिखित है -

धर्मेरताः सत्पुरुषैः समेताः, तेजस्विनो दानगुण प्रधानाः।
अहिंसका वीतमलाश्च लोके भवन्ति पुण्या मुनयः प्रधाना॥

जो कभी किसी प्राणी की हिंसा नहीं करते तथा जो हिंसा आदि के मल संसर्ग से रहित हैं, ऐसे धर्म तत्पर तेजस्वी सत्पुरुषों की सङ्गति करने वाले श्रेष्ठ मुनि ही संसार में पूजनीय होते हैं।

ब्रह्मपुराण में उक्त है १५/७५ -

अहिंसकस्ततः सम्यक् धृतिमान् नियतेन्द्रियः।
शरण्य सर्वभूतानां गतिमाप्नोत्यनुत्तमाम्॥

जो इन्द्रियजयी, धृति सम्पन्न पूर्णतः सम्यक् रूप से अहिंसक होता हुआ, समस्त प्राणियों के लिए शरण समान होता है, वह उत्तम गति को प्राप्त करता है।

ब्रह्मपुराण के ११६/७-९ में उक्त है -

कर्म्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किञ्चन।
ये न मज्जन्ति कस्मिंश्चित्तेन बधन्ति कर्मभिः॥
प्राणातिपाताद्विरताः शीलवन्तो दयान्विताः।
तुल्य द्वेष्टा प्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्म बन्धनैः॥
सर्वभूतदयावन्तो विश्वस्याः सर्वजन्तुषु।
त्यक्त हिंस्र समाचारा स्तेनराः स्वर्गगामयः॥

जो मन वचन कर्म से किसी की हिंसा नहीं करते हैं और जो किसी विषय में रागग्रस्त होकर डूबते नहीं हैं, वे कर्मों के बन्धन में नहीं बन्धते। जो प्राणीवध से निवृत्त हैं, शील सम्पन्न व दयालु हैं तथा शत्रु व मित्र में समभाव रखते हैं, वे कर्म-बन्धन से छूट जाते हैं।

महाभारत के १२/२१५/६, ७ में लिखित है -

अहिंसा सत्य वचनं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
क्षमा चैवाप्रमादश्च यस्यैते स सुखी भवेत्॥
यश्चैनं परमं धर्मं सर्वभूतसुखावहम्।
दुःखाग्निः मरणं वेद सर्वज्ञः स सुखी भवेत्॥

अहिंसा, सत्य भाषण, समस्त प्राणियों के प्रति सरलतापूर्वक वर्ताव, क्षमा, प्रमादशून्यता ये गुण जिस पुरुष में विद्यमान होते हैं वही सुखी होता है। जो मनुष्य इस अहिंसारूपी परम धर्म को समस्त प्राणियों के लिये सुखद और दु:ख निवारक जानता है वही सर्वज्ञ और सुखी होता है।

महाभारत के ३/३१४/८ में उक्त है-

अहिंसा समता शान्तिरानृशंस्यममत्सरः।
द्वाराण्येतानि में विद्धि॥

यक्ष वेशधारी धर्मराज ने युधिष्ठिर को कहा था कि अहिंसा, समता, शान्ति, दया और अमत्सरता (डाह का न होना) ये मेरे पास पहुँचने के द्वार हैं। ऐसा जानना चाहिये।

विष्णुपुराण के ३/८/१५ में लिखित है -

न ताड़यति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः।

हे नरेन्द्र! जो मनुष्य किसी प्राणी अथवा वृक्षादि अन्य देहधारियों को पीड़ित अथवा नष्ट नहीं करता है उससे केशव सन्तुष्ट रहते हैं।

महाभारत के ५/६९/१८ में उक्त है -

अप्रमादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम्॥

प्रमाद से दूर रहना तथा किसी भी प्राणी की हिंसा न करना - ये निश्चय ही तत्वज्ञान के उत्पादक हैं।

महाभारत के १२/२९६/३५-३६ में उक्त है -

कानि कर्म्माणि धर्म्माणि लोकेऽस्मिन् द्विजसत्तम्।
न हिंसन्तीह भूतानि क्रियमाणानि सर्वदा॥
श्रृणु मेऽत्र महाराज यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
यानि कर्म्माण्यहिंस्राणि नरं त्रायन्ति सर्वदा॥

राजा जनक ने पराशर मुनि से कहा - द्विज श्रेष्ठ! इस लोक में कौन-कौन ऐसे धर्मानुकूल कर्म हैं, जिनका अनुष्ठान करते समय कभी किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं होती अपितु रक्षा होती है? पराशर मुनि ने राजा जनक को कहा - महाराज! तुम जिन कर्मों के विषय में पूछ रहे हो, उन्हें बताता हूँ। सुनो! जो कर्म हिंसा से रहित हैं, वे ही सदा मनुष्य की रक्षा करते हैं। अर्थात् अहिंसा ही उनकी रक्षक होती है।

विष्णु धर्मपुराण के २/११७/१८ में लिखित है -

आर्त्त प्राणप्रदा ये च ये च हिंसा विवर्जकाः।
अपीड़काश्च भूतानां ते नराः स्वर्ग गामिनः॥

आर्त्त, दु:खी, पीड़ित व्यक्तियों को प्राण-दान देने वाले, हिंसा से निवृत्त रहने वाले और प्राणियों को कभी पीड़ा नहीं देने वाले व्यक्ति स्वर्ग जाते हैं।

महाभारत के १३/७/१५ में लिखा है-

रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते॥

अहिंसा धर्म के आचरण से रूप, ऐश्वर्य और आरोग्यरूपी फल की प्राप्ति होती है।

रूपमव्यङ्गतामायुबुद्धिं सत्वं बलं स्मृतिम्।
प्राप्तु कामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै महात्मभिः॥

महाभारत १३/११५/६ में लिखा है-

जो सुन्दर रूप, पूर्णांगता, पूर्ण आयु, उत्तम बुद्धि, सत्व, बल और स्मरण शक्ति प्राप्त करना चाहते थे, उन महात्मा पुरुषों ने अभीष्ट प्राप्ति के लिये हिंसा का सर्वथा त्याग कर दिया था। अर्थात् हिंसा त्याग या अहिंसा से अभीष्ट फल प्राप्त किया जा सकता है।

अहिंसका सुखावहा।

विदुर नीति १/५२ में लिखा है-

एकमात्र अहिंसा धर्म्मचर्य्या ही सुख देने वाली है।

ये वा पापं न कुर्वन्ति कर्म्मणा मनसा गिरा।
निक्षिप्त राज भूतेषु दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

विष्णु धर्म्मपुराण के २/१२२/१३ में लिखा है -

जो मन वाणी और क्रिया द्वारा कभी पाप नहीं करते हैं और किसी प्राणी को शारीरिक हिंसा से कष्ट नहीं पहुँचाते हैं, वे संकट से पार हो जाते हैं।

पद्मपुराण के ३/३०/२५ में उक्त है-

कर्म्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्व्वदा।
परपीड़ां न कुर्व्वन्ति न ते यान्ति यमालयम्॥

जो किसी भी स्थिति में कर्म, वाणी, मन से किसी को पीड़ित नहीं करते, वे कभी यमलोक नहीं जाते।

मनुस्मृति के ५/१६ में वर्णित है-

यो बन्धन बध क्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति।
स सर्व्वस्य हितप्रेप्सु सुखमत्यन्तमश्नुते॥

जो जीवों का वध व बन्धन नहीं करना चाहता है, वह सबका हिताभिलाषी व्यक्ति अत्यन्त सुख प्राप्त करता है।

मनुस्मृति में उक्त है-

यद् ध्यायति यत्कुरुते धृति बध्नाति यत्र च।
तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन॥

जो किसी की हिंसा नहीं करता, वह जिसका चिन्तन करता है, जो कार्य करता है और जिस पर आत्मचिन्तन आदि एवं ध्यान लगाता है, उन सबों को बिना विशेष प्रयत्न से ही प्राप्त कर लेता है।

महाभारत के १२/१७५/२६ में लिखा है -

न हिंसयति यो जन्तून् मनोवाक्काय हेतुभिः।
जीवितार्थापनयनैः प्राणिभि र्न स हिंस्यते॥

जो मनुष्य मन वाणी और शरीर रूपी साधनों के द्वारा प्राणियों की हिंसा नहीं करता, जीवन और अर्थ का नाश करने वाले हिंसक प्राणी उसकी भी हिंसा नहीं करते हैं।

महाभारत के १२/१०/९१ में उक्त है -

अहिंसा सत्यमक्रोधः तपो दानं दयोमतिः।
अनसूयाऽप्यमात्सर्य्यमनीर्ष्या शीलमेव च॥
एष धर्म कुरु श्रेष्ठ कथितः परमेष्ठिना।
ब्रह्मणा देवदेवेन अयं चैव सनातनः।
अस्मिन् धर्मे स्थितो राजन् नरो भद्राणि पश्यति॥

अहिंसा, सत्य, अक्रोध, तपस्या, दान, मन व इन्द्रियों का संयम, विशुद्ध बुद्धि, किसी का दोष न देखना, किसी से डाह और जलन न रखना तथा उत्तम शील स्वभाव का परिचय देना ये धर्म हैं। इसका उपदेश परमेष्ठी ब्रह्मा ने किया था और यही सनातन धर्म है, इस धर्म में जो स्थित है, उसे कल्याण का दर्शन होता है।

ऋग्वेद ८/९३/१५ में उक्त है -

अजातशत्रुरस्तृतः॥

अजातशत्रु निर्वैर कभी किसी से हिंसित विनष्ट नहीं होता है।

पद्मपुराण ३/३१/३६ में लिखित है -

लोकद्वये न विन्दन्ति, सुखानि प्रेम हिंसकाः।
ये नः हिन्सन्ति भूतानि, न ते विभ्यति कुत्रचित्॥

जो प्राणि हिंसा करते हैं, वे इहलोक और परलोक दोनों जगह सुख से वंचित होते हैं। जो प्राणी हिंसा से विरत हैं उन्हें कहीं किसी से भय नहीं होता है।

पद्मपुराण के २/९६/२५ में उक्त है -

सर्वहिंसा निवृत्ताश्च साधुसङ्गाश्रये नराः।
सर्वस्वापि हिते युक्ता स्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

जो व्यक्ति सर्व प्रकार के हिंसा से निवृत्त है, साधु सज्जन लोगों की सङ्गति करते हैं और जो लोक सभी के हित साधन परोपकार में संलग्न रहते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।

महाभारत के १३/१४४/५६-५९ में उक्त है -

यस्तु शुक्लाभिर्जातीयः प्राणिघात विवर्जितः।
निक्षिप्त शस्त्रो निर्दण्ड न हिंसति कदाचन।
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते॥
सर्वभूतेषु सस्नेह यथाऽऽत्मनि तथापरे।
ईदृशः पुरुषोत्कर्षो देवि देवत्वमुच्यते॥
उपपन्ना सुखान् भोगान् प्राश्नाति मुदान्वितः।
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते।
तत्र दीर्घायुरुत्पन्नः स नरः सुखमेधते॥

जो शुद्ध कुल में उत्पन्न और जीव हिंसा से अलग रहने वाला है, जिसने शस्त्र और दण्ड का परित्याग कर दिया है, जिसके द्वारा कभी किसी की हिंसा नहीं होती, जो न मारता है और न मारने की आज्ञा देता है, और न मारने वाले का अनुमोदन ही करता है, जिसके मन में सब प्राणियों के प्रति स्नेह भाव बना रहता है तथा जो अपने ही समान दूसरों पर भी दया दृष्टि रखता है, देवि! ऐसा श्रेष्ठ पुरुष तो देवत्व को प्राप्त होता है और देवलोक में स्वतः उपलब्ध हुए सुखद भोगों का अनुभव करता है। यदि कदाचित् वह मनुष्य लोक में जन्म लेता है तो वह मनुष्य दीर्घायु और सुखी होता है।

महाभारत १३/११५/६९ में कथित है-

तदेतदुत्तमम् धर्मम् अहिंसा धर्म लक्षणम्।
ये चरन्ति महात्मानो नाक पृष्ठे वसन्ति ते॥

यह अहिंसारूप धर्म सब धर्मों से उत्तम है। जो इसका आचरण करते हैं, वे महात्मा स्वर्गलोक में निवास करते हैं।

महाभारत के ५/३८/३८ में उक्त है-

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणाञ्चानभिः द्रोहः सप्तैताः समिध श्रियः॥

धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रिय संयम, पवित्रता, दया, कोमलवाणी और मित्र से द्रोह न करना ये सात बातें लक्ष्मी को बढ़ाने वाली हैं।

ब्रह्म पुराण में कथित है - (११६/५४/५७)

शुभेन कर्मणा देवि! प्राणिघात विवर्ज्जितः।
निक्षिप्त शस्त्रो निर्दण्डो न हिंसति कदाचन॥
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते।
सर्वभूतेषु सस्नेही यथात्मनि तथाऽऽपरे॥
ईदृशः पुरुषो नित्यं देवि देवत्मश्नुते।
उपपन्नान् सुखान् भोगान् सदा अश्नाति यदाऽऽच्युतः॥
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते।
एष दीर्घायुषां मार्गः स वृत्तानाम् सुकर्म्मणां।
प्राणिहिंसा विमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः॥

पार्वती को शंकर ने कहा-हे देवि! शुभ कर्म्मों को करने वाला व्यक्ति, प्राणिबध के पाप से दूर रहता है और वह शस्त्र और दण्ड के प्रयोग का त्यागकर किसी की भी हिंसा नहीं करता। वह स्वयं न किसी का वध करता है, न ही किसी को प्राणिवध हेतु प्रेरित करता है और न ही प्राणी वध का अनुमोदन करता है। सभी प्राणियों के प्रति स्नेह भाव रखता है। ऐसा व्यक्ति मरकर देवता होता है। जन्म होने पर भी सुखी होता है। सदाचार परायण होकर दीर्घायु प्राप्त करता है।

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड ६/३२/६५ में कथित है -

अहिंसको याति वैराग्यं नाकपृष्ठमनाशकम्॥

हिंसा से विरत व्यक्ति को अविनाशी स्वर्गीय राज्य का आधिपत्य प्राप्त होता है।

हिंसा की निन्दा करते हुए विष्णुधर्मपुराण में कहा गया है - ३/२५२/१-

सर्वेषामेवपापानां हिंसापरमिहो च ते।
हिंसा बलमसाधूनां हिंसा लोकद्वयापहा॥

सभी पापों में बड़ा पाप है हिंसा। यह असज्जनों दुष्टों का ही बल होती है और वह उनके दोनों लोकों को बिगाड़ने वाली होती है।

पद्मपुराण का कथन है २/६७/६०, ६१ -

वने निरपराधानां प्राणिनां च मारणम्।
गवां गोष्ठे वने चाग्नेः पुरे ग्रामे च दीपनम्॥
इति पापानि धीराणि सुरापान समानि च॥

वन में निरपराध प्राणियों को मारना, गोशाला वन नगर ग्राम में आग लगा देना-ये सुरापान की तरह घोर पाप है।

त्यक्त स्वधर्माचरणा निर्घृणाः परपीडकाः।
चंडाश्च हिंसका निरयं श्लेच्छास्तर्ह्यविवेकिनः॥

जो लोक स्वधर्माचरण को छोड़ने वाले, दया रहित, परपीड़क, क्रोधी तथा हिंसा करने वाले होते हैं। वे म्लेच्छ हैं। उनमें विवेक का लेश भी नहीं होता है।

योगसूत्र २/३० भोजवृत्ति में लिखित है -

प्राणवियोग प्रयोजन व्यापारो हिंसा, सा च सर्वानर्थ हेतुः॥

शरीर से प्राण को वियुक्त या पृथक करने के उद्देश्य से किया गया कार्य या चेष्टा हिंसा है, यह हिंसा सभी अनर्थों का मूल कारण है।

विष्णुपुराण ३/८/१० में उक्त है -

निघ्नान्नान्यान्हि न स्त्येनं सर्वभूतो यतो हरिः॥

दूसरों की हिंसा करने वाला उन्हीं हृदयस्थित भगवान की हिंसा करता है क्योंकि भगवान् हरि सर्वभूतमय हैं। वे सभी प्राणियों में स्थित हैं।

हिंसा गरीयसी सर्वपापेभ्योऽनृतभाषणम्॥

सब पापों से बढ़कर हिंसा और झूठ बोलना है।

मनु स्मृति में उक्त है - ४/१७० -

हिंसा रतश्च योनित्यं नेहासौ सुखमेधते।

सर्वदा हिंसा में निरत मनुष्य परपीड़ा में संलग्न है, वह मनुष्य इस लोक में सुखी व समृद्ध नहीं होता है। हिंसा तामसिक प्रवृत्ति है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण ४/२४/६१-६३ में कथित है -

सत्वोदयाञ्च मुक्तीच्छा कर्मेच्छा च रजोगुणात्।
तमोगुणाज्जीव हिंसा कोपोऽहंकार एव च॥

शरीर में सत्वगुण का उद्रेक होने से जीव की मुक्ति की इच्छा होती है, रजोगुण के उदय से सांसारिक कर्म करने की इच्छा होती है और तमोगुण से जीवों में हिंसा क्रोध अहंकार उत्पन्न होते हैं।

लौकिक पारलौकिक दुष्परिणाम हिंसा से होता है -

महाभारत के १३/११५/३२ में उक्त है-

त्रातारं नाधिगच्छन्तिरौद्राः प्राणिविहिंसकाः।
उद्वेजनीया भूतानां यथा बालमृगास्तथा॥

जैसे हिंसक पशुओं का शिकार लोक करते हैं, और वे पशु अपने लिये कहीं स्थल नहीं पाते, उस प्रकार प्राणियों की हिंसा करने वाले क्रूर मनुष्य

दूसरे जन्म में सभी प्राणियों द्वारा पीड़ित किये जाते हैं, और उन्हें अपने लिए कोई संरक्षक भी नहीं मिलता।

महाभारत के १३/१४५ में शिव पार्वती को कहते हैं-

ये पुरा मनुजा देवि सर्वप्राणिषु निर्दयाः।
घ्नन्ति बालां स युञ्जन्ते मृगाणां पक्षिणामपि॥
एवं युक्त समा वत्सः पुनर्जन्मनि शोचते।
मानुष्यं सुचिरात् प्राप्य निरपत्या भवन्ति ते॥
पुत्रशोक युतश्चापि नास्ति तत्र विचारणाम्॥

देवि! जो मनुष्य पहले समस्त प्राणियों के प्रति निर्दयता का वर्ताव करते हैं, मृगों और पक्षियों के बच्चों को भी मारकर खा जाते हैं, ऐसे आचरण करने वाले जीव फिर जन्म लेने पर दीर्घकाल के पश्चात् मानवयोनि को प्राप्त कर सन्तानहीन तथा पुत्रशोक से सन्तप्त होते हैं। इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।

मनुस्मृतिकार कहते हैं ५/४५ -

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते॥

जो व्यक्ति अहिंसक जीवों का अपने सुख-जिह्वास्वाद शरीर पुष्टि आदि की इच्छा से बध करता है, वह जीता हुआ तथा मरकर भी कहीं पर सुख समृद्धि नहीं प्राप्त करता।

विष्णुपुराण के ३/७/२४ में लिखित है -

हरतिपरधनं हिंसन्ति जन्तून् वदन्ति तथाऽनृत निष्ठुराणि यश्च।
अशुभजनितदुर्मदस्य पुंसः कलुषमते र्हृदि तस्य नास्त्यनन्तः॥

जो व्यक्ति दूसरों का धन हरण करता है, जीवों की हिंसा करता है तथा मिथ्या और कटुभाषण करता है, इन अशुभ कर्मों के कारण मदमत्त उस

दुर्बुद्धि के हृदय में भगवान् अजित नहीं टिक सकते।

पंचतन्त्र में लिखित है -

हिंसकान्यपि भूतानि यो हिनस्ति स निर्घृणः।
स याति नरकं घोरं किं पुन र्यः शुभानि च?

जो मनुष्य हिंसक प्राणियों को भी मारता है, वह निर्दयी होता है और वह भीषण नरक को प्राप्त होता है। तथा जो अहिंसक पशुओं को मारता है, उसका तो कहना ही क्या? वह तो घोर नरक को प्राप्त होता है।

भूतेषु बद्ध वैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति।

श्रीमद्भागवत पुराण के ३/२९/३० में कथित है -

जो अन्य प्राणियों के साथ वैर भाव रखता है, उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिल सकती।

महाभारत में लिखित है १०/६/२०,२१ -

शास्त्र दृष्टानविद्वान् यः समतीत्य जिघांसिता।
स पथः प्रच्युतो धर्मान् कुपथे प्रतिहन्यते॥

जो शास्त्रदर्शी पुरुषों की आज्ञा का उल्लघंन करके दूसरों की हिंसा करना चाहता है, वह धर्ममार्ग से भ्रष्ट होकर कुमार्ग में पड़कर स्वयं ही मारा जाता है।

पद्मपुराण के ३/३१/३० में उक्त है-

भूतानि योऽत्र हिन्सन्ति जल स्थल चराणि च।
जीवनार्थं च ते यान्ति कालसूत्रं च दुर्गतिम्॥

जो जलचर स्थलचर प्राणियों को अपनी जीविका के लिए मारता है, वह कालसूत्र नरक में दुर्गति को प्राप्त करता है।

याज्ञवल्क्य स्मृति के ३/४/१३६ में उक्त है-

अदत्तादान निरताः परदारोपसेवकः।
हिंसकश्चाविधानेन स्थावरेष्वभिजायते॥

चोरी करने वाला, परस्त्री गमन करने वाला तथा शास्त्रीय विधि के विरुद्ध हिंसा करने वाला मरकर स्थावर-वृक्षलता आदि अधम कोटि की योनि में जन्म लेता है।

मनुस्मृति के १२/५९ में लिखित है-

हिंसा भवन्ति क्रव्यादाः।

सदा हिंसा करने वाले बहेलिया, शिकारी आदि मनुष्य दूसरे जन्म में क्रव्याद् (कच्चे मांस खाने वाले विलाव आदि) होते हैं।

मनुस्मृति के १२/४२-४४ में लिखित है-

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः॥
हस्तिनश्च तुरंगाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः॥
चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः॥

सत्वगुण का व्यवहार करने वाले सात्विक व्यक्ति देवत्व को, रजोगुण का व्यवहार करने वाले राजसिक व्यक्ति मनुष्यत्व को, तामस तमोगुण यानि हिंसा व क्रूरता से सम्पन्न व्यक्ति तिर्य्यकत्व पशु-पक्षी वृक्षलता गुल्म आदि की योनि को प्राप्त करते हैं। ये तीन प्रकार की गतियाँ हैं। स्थावर (वृक्ष लता गुल्म पर्वतादि अचर), कृमि (सूक्ष्म कीड़े), कीट, मछली, सर्प, कछुवा, पशु, मृग, ये सब जघन्य (हीन) तामसी गतियां हैं। हाथी, घोड़ा, निन्दित शूद्र, निन्दित म्लेच्छ, सिंह, बाघ और सूअर; ये मध्यम तामसी गतियां हैं। चारण

(बन्दी-भाट आदि) सुपर्ण (पक्षि-विशेष), कपटाचारी मनुष्य, राक्षस और पिशाच; ये उत्तम तामसी गतियां हैं।

विष्णु धर्मपुराण के ३/५२/१३ में लिखा है -

अतो वै नैव कर्त्तव्या प्राणि हिंसा भयावहा।
वियोज्य प्राणिनं प्राणैस्तथैकमपि निष्ठुराः॥

एक भी प्राणी को उसके प्राणों से रहित करने वाला निर्दय कहा जाता है। अतः भयावह प्राणिहिंसा कभी नहीं करनी चाहिये।

श्रीमद्भागवत के ११/११/२९-३२ में श्रीकृष्ण उद्धव को कहे थे-

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥
कामैरहत धीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः।
अनीहो मितभुक् शान्त स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥
अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जित षड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः।
आज्ञायैव गुणान् दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत् स सत्तमः॥

जो व्यक्ति कृपालु, द्रोह न करने वाला, सर्वदा क्षमा करने वाला, दृढ़ सत्यता से युक्त, ईर्ष्या इत्यादि दोषों से रहित, सबका उपकार करने वाला, कामविकार रहित चित्त वाला, बाहरी इन्द्रिय को संयम में रखने वाला, कोमल चित्त, सदाचारी, परिग्रहहीन, निष्काम प्राप्त भोजन से तृप्त, शान्तचित्त, अपने धर्म में दृढ़, केवल गुह्य ईश्वर पर आश्रित, विचारशील, सावधान, निर्विकार, दीनताशून्य तथा क्षुधा, प्यास, शोक मोह, वृद्धता व मृत्यु को कुछ न समझने वाला, प्रतिष्ठा का अनभिलाषी, औरों को प्रतिष्ठित करने वाला, दूसरों को समझाने में समर्थ, धूर्तता रहित, करुणाशील ओर सत्यवादी है तथा वेदरूप मेरी आशा में सूचित अपने धर्मों को करने में गुणों को एवं न करने में दोषों को

जानता है। किन्तु उन सब धर्मों को छोड़कर मेरी भक्ति करता है, वह श्रेष्ठ साधु है।

गीता के १२/१५ में उक्त है -

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥

जिनसे कोई उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो किसी से उद्वेग को प्राप्त नहीं होते एवं जो प्राकृत हर्ष, असहिष्णुता, भय और उद्वेग से मुक्त हैं, वे मुझे प्रिय हैं।

महाभारत के ६/३६/१३-१४ एवं गीता के १२/१३-१४ में उक्त है -

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकार समदुःख सुखक्षमी॥
सन्तुष्टः सततः योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः।
मय्यर्पित मनो बुद्धि र्यो मद्भक्त स मे प्रियः॥

जो व्यक्ति सर्वभूतों में द्वेषभाव रहित, स्वार्थ रहित, सबका प्रेमी और निष्कारण दयालु है तथा ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख-दुःखों की प्राप्ति में समभावी और क्षमावान् अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है तथा जो योगी एवं निरन्तर सन्तुष्ट है, मन-इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए हैं और ईश्वर को अर्पण किए हुए मन बुद्धि वाला है। वह ईश्वर को प्रिय है।

श्रीमद्भागवत के ११/३/२२-२५ में लिखित है -

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदो हरिः॥
सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥

शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः॥
सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्।
विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येन केनचित्॥

प्रबुद्ध मुनि ने राजा निमि को कहा-गुरुदेव को ही आत्मा तथा इष्टदेव मानता हुआ उन्हीं से भागवत धर्मों को सीखे। गुरु के प्रति निष्कपट आचरण करने से स्वयं अपने को दे डालने वाले श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं। भागवत धर्म इस प्रकार है-सर्वप्रथम सब ओर से मन की असङ्गता, साधुजनों का सङ्ग, सब प्राणियों के प्रति यथोचित दया, मैत्री एवं विनय भाव, शौच, तप, तितिक्षा अर्थात् द्वन्दों को सहना, मौन अर्थात् व्यर्थ वार्ता वर्जन, मननशील, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य्य, अहिंसा, सुख-दुःखादि द्वन्दों में समान व्यवहार, आत्मस्वरूप श्रीहरि को सर्वत्र देखना, एकान्त सेवन, अनिकेतता अर्थात् गृह आदि में ममत्व का अभाव, पवित्र वस्त्र पहनना और जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करना।

भारतीय संस्कृति के सर्व प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं। वेदों में अहिंसा या अहिंसक आचरण के प्रेरक अनेक वचन हैं।

यजुर्वेद के १२/३२ में उक्त है-

मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः।

तू अपने शरीर से किसी को भी पीड़ित न कर।

मा हिंसी पुरुषं जगत्।

मनुष्य और जंगम गाय भैंस आदि पशुओं की हिंसा न करो। (यजुर्वेद १६/३)

कविर्देवो न दभायत् स्वधावान्। (अथर्ववेद ४/१/७)

क्रान्तदर्शी श्रेष्ठ ज्ञानी ऐश्वर्य से समृद्ध होकर भी किसी को पीड़ा नहीं देते हैं, सब पर अनुग्रह करते हैं।

नान्योऽन्यं हिंस्याताम्। (शतपथ ३/४/१/२४) -

परस्पर एक दूसरे को हिंसित अर्थात् पीड़ित नहीं करना चाहिये।

नेदमन्योऽन्यं हिन्सात्। (शतपथ १/१/४/५)

मनुष्य एक दूसरे का हनन न करें।

इमाँल्लोन् छान्तो न हिनस्ति। (शतपथ ३/६/४/१३)

शान्त पुरुष किसी भी प्राणी की हिंसा पीड़ा देना आदि कार्य नहीं करते हैं।

प्राणि हिंसा न कुर्वीत॥ (पद्मपुराण ५/१०/५६)

प्राणियों की हिंसा न करें।

महाभारत में उक्त है - १३/११६/१२

अहिंसा लक्षणों धर्म इति धर्म विदो विदुः।
यदहिंसात्मकं कर्म तत् कुर्यादात्मकम् नरः॥

धर्मज्ञ पुरुष यह जानते हैं कि अहिंसा ही धर्म का लक्षण है। मनस्वी पुरुष वही कार्य करें जो अहिंसात्मक हो।

छान्दोग्य उपनिषद् ३/१७/४ में उक्त है -

यत् तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति अस्य दक्षिणा।

जो व्यक्ति तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्य वचन में जीवन व्यतीत करता है, उसका जीवन दक्षिणा यज्ञ की पूर्णता का जीवन है।

श्वेताश्वतर उपनिषद में उक्त है ३/६ -

मा हिंसीः पुरुषं जगत्।

जगत् में किसी पुरुष अर्थात् प्राणी की हिंसा मत करो।

नारदीय पुराण (१/४३/७५) में उक्त है -

अहिंस्त्रः सर्वभूतानां मैत्रायण गतश्चरेत्।

किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। सबके साथ मैत्रीपूर्ण वर्ताव करे।

महाभारत में कथित है - १२/२७८/५

न हिंस्यात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत्।
नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचिद्॥

मुमुक्ष पुरुष समस्त प्राणियों में से किसी की भी हिंसा न करे। किसी को भी पीड़ा न दे। सबके प्रति मित्रभाव रखकर विचरता रहे। इस नश्वर जीवन को लेकर किसी के साथ वैरता न करे।

महर्षि कश्यप ने श्रीमद्भागवत के ६/१८/४७ में कहा है -

न हिंस्याद् भूत जातानि न शपेन्नानृतं वदेत्॥

व्रत पालन करते समय साधक को चाहिये कि वह कभी किसी प्राणी की किसी तरह हिंसा न करे, झूठ न बोले।

महाभारत के १२/१२४/६६ में उक्त है-

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानञ्च शीलमेतत् प्रशस्यते॥

मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी भी प्राणी में द्रोह न करना, सब पर दया करना और यथाशक्ति दान देना, यह शील कहलाता है। जिसकी प्रशंसा सबलोक करते हैं।

देवी भागवत के ५/१५/१५ में उक्त है-

परोपतापनं कार्य्यं वर्ज्जनीयं सदा बुधः।

विद्वानों को परसन्तापकारी कार्य्य कभी नहीं करना चाहिये।

मनुस्मृति के ४/५४ में उक्त है-

न प्राणबाधमाचरेत्॥

गृहस्थ ऐसा कोई कार्य्य न करे जिससे किसी प्राणी को आघात, पीड़ा हो।

विष्णु धर्मपुराण के ३/२६८/११ में उक्त है -

प्राणायथाऽत्मनोऽभीष्टाः भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन गन्तव्यमात्मविद्भिर्महात्मभिः॥

जैसे अपने स्वयं के प्राण प्यारे हैं, अभीष्ट हैं, वैसे ही अन्य प्राणियों को भी अभीष्ट हैं, इस प्रकार आत्मवेत्ता महात्माओं को अपने समान दृष्टि रखकर व्यवहार करना चाहिये।

कूर्म पुराण के २१/१६/३६ में उक्त है-

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

जो अपने को प्रतिकूल लगे, वह कर्म अन्य के साथ भी न करे।

पञ्चतन्त्र ३/१०३ में उक्त है-

संक्षेपात् कथ्यते धर्मो जनाः किं विस्तरेण वः।
परोपकार पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥
श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्य्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

हे मनुष्यों! तुम्हें संक्षेप में धर्म का स्वरूप बताता हूँ। विस्तार से क्या लाभ? परोपकार ही पुण्य है। और दूसरे को दुःख देना ही पाप है। अतः दूसरे को कष्ट न देते हुए सदैव परोपकार में ही संलग्न रहना चाहिए।

धर्म का सार तत्व सुनो और सुनकर उसे हृदय में धारण करो। जो कार्य्य अपने लिए अहितकर प्रतीत हो उन्हें दूसरों के साथ नहीं करना चाहिये।

विष्णुपुराण के ३/८/१७ में लिखित है -

यथाऽऽत्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा।
हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम्॥

जो व्यक्ति स्वयं अपने और अपने पुत्रों के समान ही समस्त प्राणियों का हित चिन्तक होता है, वह सुगमता से ही श्रीहरि को प्रसन्न कर लेता है।

महाभारत के ३/२०७/४५ में उक्त है-

न पापे प्रतिपापः स्यात् साधुरेव सदा भवेत्।
आत्मनैव हतः पापो यः पापं कर्त्तुमिच्छति।

यदि कोई अपने साथ बुरा वर्ताव करे तो भी स्वयं बदले में उसके साथ बुराई न करे। सबके साथ सदा सज्जन ही रहे अर्थात् सद्व्यवहार करे। जो पापी दूसरों के साथ अहित करना चाहता है, वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

नारदीय पुराण के १/५/५७ में लिखित है -

आत्मवत् सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः।
तुल्याशत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमाः॥

जो श्रेष्ठ पुरुष सभी प्राणियों को आत्मतुल्य देखते हैं और शत्रु या मित्र दोनों के प्रति समान व्यवहार करते हैं वे भगवद्भक्त पुरुषों में श्रेष्ठतम हैं।

विष्णुधर्म पुराण के २/९०/७७ में उक्त है-

परद्रोहं तथा हिंसा प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥

प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरे से द्रोह करना तथा हिंसक आचरण प्रयत्नपूर्वक छोड़ दें।

प्रशस्त विचार एवं समदर्शन ही अहिंसा का आधार है।

पद्मपुराण के १/१९/३३६-३३७ में उक्त है -

मातृवत् परदाराश्च पर द्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥

जो परस्त्रियों को माता के समान, पर धन को लोष्ठ ढेले के समान और सब प्राणियों को आत्मा के समान देखता है, वस्तुतः वही द्रष्टा है, देखने वाला है।

श्रीमद्भागवत के ४/११/१३ में उक्त है-

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिल जन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति॥

सभी प्राणियों के प्रति सहनशीलता, दया, मित्रता और समता का भाव रखने वाले पर सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं।

महाभारत के ५/१६/३२ में उक्त है -

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः॥

जो सबका अस्तित्व चाहता है, कल्याण चाहता है। किसी के अस्तित्व को समाप्त करने सम्बन्धी अकल्याण की बात मन में भी नहीं लाता और जो सत्यवादी, मृदुस्वभाव युक्त जितेन्द्रिय है, वही उत्तम पुरुष माना गया है।

महाभारत के १२/२१५/८ में उक्त है-

नापध्येन्न स्पृहयेत् नाबद्धं चिन्तयेदसत्।

किसी का अहित न सोचे और न चाहे। असद्भाव व मिथ्या पदार्थों का चिन्तन भी न करे।

समस्त प्राणी गौ पक्षी स्त्री अवध्य हैं अर्थात् रक्षणीय हैं।

पंचतन्त्र में उक्त है-

अवध्यो ब्राह्मणो बालः स्त्री तपस्वी च रोगभाक्॥

ब्राह्मण, बालक, स्त्री, तपस्वी और रोगी अवध्य होते हैं। अर्थात् इन्हें मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता है।

अबध्नन् शत्रुः योषितः। म. पु. १८०/४९ -

शत्रु की स्त्रियां अबध्या होती हैं।

ब्रह्मपुराण के ११३/७४ में लिखा है -

रक्षेद् दारां स्त्यजेदीर्षां तथा अन्हि स्वप्न मैथुने।
परोपतापकं कर्म जन्तु पीडा च सर्वदा॥

गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह स्त्रियों की रक्षा करे, ईर्ष्या छोड़े, दिन में निद्रा आदि न करे। साथ ही प्राणियों को पीड़ित न करे। एवं दूसरों को संताप देने वाला कार्य भी कदापि न करे।

महाभारत के १/१५७/१३१ में लिखित है-

अवध्यां स्त्रियमित्याहुः धर्मज्ञा धर्मनिश्चये॥

धर्मज्ञ विद्वानों ने धर्म निर्णय प्रसङ्ग में नारी को अबध्य बताया है।

श्रीमद्भागवत के ४/१३/२० में उक्त है-

प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागस्वपि जन्तवः॥

यदि स्त्रियों से कोई अपराध भी हो जाय तो भी, और साधारण जीव भी उन्हें नहीं मारते।

विष्णु स्मृति में उक्त है - मलिनीकरण प्रसङ्ग में -

पक्षिणां जलचराणां जलजानां घातनम्।
कृमि कीटानाञ्च मद्यानुगत भोजनम्। इति मलापहानि।

पक्षियों जलचरों और जल में उत्पन्न प्राणियों का घात करना, कृमि कीड़ों को मारना और मद्य के साथ भोजन करना, ये भयावह पाप कहे जाते हैं।

देवी भागवत ७/२५/७५ में उक्त है-

स्त्रियो रक्षा प्रयत्नेन, न हन्तव्याः कदाचन।
स्त्रीबधे कीर्त्तितं पापं मुनिभि र्धर्मतत्परैः॥

स्त्रियों को कभी नहीं मारना चाहिए, उनकी रक्षा करना चाहिए। धर्मपरायण मुनियों ने स्त्री हत्या को पाप बताया है।

महाभारत के १२/२६२/४७ में लिखित है -

अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति।
महच्चकारा कुशल वृषं गां वाऽऽलभेद् तु यः॥

श्रुति वेद में गौओं को अघ्न्या अबध्या कहा गया है। फिर भी कौन उन्हें मारने का विचार करेगा? जो पुरुष गाय और बैलों को मारता है वह महान पाप करता है।

महाभारत के १३/१२७/१० में लिखित है -

गो ब्राह्मणं न हिंस्यात्॥

गो और ब्राह्मण का बध नहीं करे।

विष्णुधर्मपुराण के ३/२५२/२ में उक्त है -

अपि कीट पतङ्गो वा न हन्तव्यः कथञ्चन।
महद्दुःखमाप्नोति पुरुषः प्राणिनाशनात्॥

कीट हो या पतंग हो, उन्हें किसी भी परिस्थिति में नहीं मारना चाहिये। मनुष्य प्राणिहिंसा के परिणाम स्वरूप महान दुःख को प्राप्त करता है।

श्रीमद्भागवत के ५/२६/३३-३५ में उक्त है-

ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बण स्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पंचमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा विलेशयान्। ये त्विह वा अन्धावटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथामुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति॥ यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान् वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चापि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति॥

जो इस लोक में सर्पों के सदृश उग्र स्वभाव वाले पुरुष प्राणियों को दुःख देते हैं, वे स्वयं भी मरने के बाद दन्दशूक नरक में जा गिरते हैं। वहाँ पाँच-पाँच, सात-सात मुँह वाले सर्प उनके समीप आकर उन्हें चूहों की तरह निगल जाते हैं। जो व्यक्ति यहाँ दूसरे प्राणियों को अँधेरी खत्तियों, कोठों या गुफाओं में डाल देते हैं, उन्हें परलोक में यमदूत वैसे ही स्थानों में डालकर विषैली आग के धूँए में घोंटते हैं। इसीलिये इस नरक को अवटनिरोधन कहते हैं। जो गृहस्थ अपने घर आए अतिथि-अभ्यागतों की ओर बार-बार क्रोध में भरकर ऐसी कुटिल दृष्टि से देखता है मानो उन्हें भस्म कर देगा, वह जब नरक में जाता है, तब उस पापदृष्टि के नेत्रों को गिद्ध, कङ्क, काक और बटेर आदि वज्र की सी कठोर चोंचों वाले पक्षी बलात् निकाल लेते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति ३/४/१३९ में उक्त है-

निद्रालुः क्रूरकृल्लब्धी नास्तिको याचकस्तथा।
प्रमादवान् भिन्नवृतो भवेत्तिर्यक्षु तामसः॥

निद्राशील, क्रूरकर्मा, प्राणियों को पीड़ा देने वाला, लोभी, नास्तिक अर्थात् धर्मादिका निन्दक, मांगने वाला, प्रमादी, कार्य्याकार्य्य विवेक शून्य, वेद-विरुद्ध आचरण करने वाला तमोगुणी व्यक्ति मरकर तिर्य्यग् पशु योनि में जन्म ग्रहण करता है।

श्रीमद्भागवत के १०/८/३१ में उक्त है-

हिंस्त्रः स्वपापेन विहिंसित खलः साधु समत्वेन भयाद् विमुच्यते।

हिंसक दुष्ट व्यक्ति को उसके स्वयं के पाप ही नष्ट कर डालते हैं, जबकि साधु सज्जन पुरुष अपनी समता-समदृष्टि से ही खतरे से बच जाते हैं।

शिवपुराण के २/५/५/२० में उक्त है -

न हिंसा सदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे।
हिंसको नरकं गच्छेत् स्वर्गं गच्छेदहिंसका॥

चराचर सहित त्रैलोक्य में हिंसा के समान कोई पाप नहीं है। हिंसक नरक जाता है और अहिंसक स्वर्ग को प्राप्त करता है।

मनुस्मृति के ४/१९५ में लिखित है -

धर्मध्वजी सदा लब्ध श्छाद्मिको लोकदम्भकः।
वैड़ाल व्रतिको ज्ञेयो हिंस्त्रः सर्वाभिसन्धकः॥
ते पतन्त्यन्धतामिस्त्रे तेन पापेन कर्म्मणा।

हिसंक, धर्म्मध्वजी (अपनी प्रसिद्धि के लिये धर्म का ढोंग करने वाला), लोभी, कपटी, संसार को ठगने वाला, किसी की धरोहर नहीं वापस करने वाला और दूसरों के गुणों को सहन न करने वाला, निन्दा करने वाला विड़ाल व्रतिक कहा गया है। ऐसे लोग अपने पाप के कारण अन्धतामिश्र नरक में जाते हैं।

विष्णुपुराण के १/१९/६ में उक्त है-

कर्मणा मनसा वाचा परपीड़ा करोति यः।
तद् बीजं जन्म फलति प्रभूतं तस्य चाशुभम्॥

जो व्यक्ति मन, वचन तथा कर्म से दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, इसके

कारण उस व्यक्ति को अनेक अशुभ जन्म लेने और भोगने पड़ते हैं।

ऋग्वेद के ८/६७/७ में लिखित है-

अस्ति देवा अंहोरुर्कस्ति रत्न मनागसः।

देवों विद्वानों! पापशील हिंसक को महापाप होता है और अहिंसक धर्मात्मा को अतीव दिव्य श्रेय सुकृत की प्राप्ति होती है।

मार्कण्डेय पुराण के १५/३९-४२ में उक्त है -

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परघर्मावघट्टनम्।
नैष्ठुर्य्यं निर्घृणत्वञ्च परदारोपसेवनम्॥
परस्वापहरणाशौचं देवतानाञ्च कुत्सनम्।
निकृत्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यं च नृणां बधः॥
यानि च प्रतिसिद्धानि तत् प्रवृत्तिश्च सन्तता।
उपलक्ष्याणि जानीयाम् मुक्तानां नरकादनु॥

परनिन्दा, कृतघ्नता, किसी को मर्मान्तिक पीड़ा पहुँचाना, निष्ठुरता, निर्दयता, परनारी सेवन, परधनापहरण, अपवित्रता, देवनिन्दा, कपट से किसी को ठगना, कृपणता, नरहत्या तथा अन्य निषिद्ध कर्मों में निरन्तर प्रवृत्ति ऐसे चिह्न हैं जिनसे यही अनुमान करना चाहिये कि ऐसा करने वाले लोक नरक की यातना भोगकर नरक से निकले हैं और मनुष्य योनि में आये हैं।

महाभारत के विदुरनीति में उक्त है -

हिंसा बलमसाधूनाम्॥

हिंसा पापी पुरुषों का ही बल है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखित है -

हिंसा च हिंस्त्र जन्तूनां सतीनां पति सेवनम्।

जिस प्रकार सती पतिव्रता स्त्रियों का बल पतिसेवा होती है वैसे ही

हिंसक स्वभाव वाले प्राणियों का बल हिंसा होती है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के ४/४/२३,२६ में उक्त है -

ये मिथ्या वादिनस्तात दया सत्य विवर्जिताः।
निन्दका गुरु देवानां तेषां भारेण पीड़िता॥
जीवघाती गुरुद्रोही ग्रामयाजी च लुब्धक।
शवदाही शूद्र भोजी तेषां भारेण पीड़िताः॥

पृथ्वी माता प्रजापति को कही थीं - हे तात! जो मिथ्याभाषी झूठे, दया सत्य से हीन तथा गुरु व देवों की निन्दा करने वाले हैं, उन लोगों के भार से मैं पीड़िता रहती हूँ। जीव हिंसक, गुरुद्रोही, गाँव-गाँव में यज्ञ कराने वाले, कसाई, शूद्रों के शव का दाह और उसका अन्न भोजन करने वाला, इन लोगों के भार से मैं पीड़िता हो रही हूँ।

अथर्ववेद के ३/२४/१ में उक्त है-

पयस्वन् मामकं वचः॥

मेरा वचन दूध जैसा मधुर, सारयुक्त एवं सबके लिये उपादेय हो।

स्कन्द पुराण के १/२/१४१/१६४ में लिखित है -

त्वंकारो वा वधो वापि गुरूणामुभयं समम्॥

गुरुजनों के प्रति "**तुम**" कहकर बोलना या उनका वध करना-दोनों समान ही है।

महाभारत के ८/६९/८६ में उक्त है -

अबधने वधः प्रोक्तो यद्गुरुस्त्वमिति प्रभुः॥

गुरु जैसे पूज्य व्यक्ति को '**तूँ**' इस शब्द से तुच्छता की दृष्टि से सम्बोधन करना ही उन्हें बिना मारे ही मार डालना है।

महाभारत के १३/२६२/५२ में कथित है -

न जातु त्वमिति ब्रूयादापन्नोऽपि महत्तरम्।
त्वंकारो वा वधो वेति विद्वत्सु न विशिस्यते॥

युधिष्ठिर! तुम बड़े से बड़े संकट पड़ने पर भी किसी श्रेष्ठ पुरुष के प्रति "**तुम**" का प्रयोग न करना। किसी को तुम कहकर पुकारना उसका बधकर डालना-इन दोनों में विद्वान पुरुष कोई अन्तर नहीं मानते।

श्रीमद्‌भागवत के १२/६/३४ में उक्त है -

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित्॥

जो परमसुख पाना चाहे वह दूसरों के दुर्वचन सहे, किसी का अपमान न करे और इस शरीर से किसी के साथ वैर भाव न रखे।

महाभारत के ५/३८/३५ में उक्त है -

अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वागदुष्टं क्रोधनं तथा।

जो बुरे वचन बोलने वाला और क्रोधी है, उसके ऊपर शीघ्र ही अनर्थ (संकट) टूट पड़ता है।

महाभारत के ८/७०/५२ में लिखा है -

गुरूणामपमानो हि वध इत्यभिधीयते।

गुरुजनों का अपमान ही उनका वध होना कहा जाता है।

कूर्म पुराण में कथित है -

न कुर्य्यात् कस्यचित् पीड़ां सुतं शिष्यञ्च ताड़येत्।

किसी को भी पीड़ित न करे, यहाँ तक कि अपने पुत्र व शिष्य की भी ताड़ना नहीं करे।

मनुस्मृति में लिखित है -

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत् क्रुद्धो नैव निपायेत्॥

किसी को भी डण्डा से न मारे।

विष्णु धर्मपुराण में लिखित है - २/९०/८७ -

आत्मानिष्ठवनं निन्दां परस्य च विवर्जयेत्।

आत्म स्तुति तथा परनिन्दा का त्याग करना चाहिए।

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड ११२/१७ में उक्त है -

परस्य निन्दां पैशून्यं धिक्कारञ्च करोति यः।
तत् कृतं पातकं प्राप्य स्व पुण्यं प्रददाति सः॥

जो व्यक्ति किसी दूसरे की निन्दा करता है तथा उसे धिक्कारता है, तो वह उस व्यक्ति के पाप को ग्रहण करता है और उसे अपना पुण्य दे देता है।

महाभारत के ८/४५/४४ में उक्त है-

परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि न मुह्यति॥

दूसरों के दोष बताने में सभी लोक सदा निपुण होते हैं। परन्तु उन्हें अपने दोषों का पता नहीं होता है या फिर उन्हें जानकर भी अनजान बने रहते हैं।

महाभारत के ५/४५/४ में उक्त है-

संभोग संविद् विषमोऽतिमानी दत्वा विकत्थी कृपणो दुर्बलश्च।
बहु प्रशंशी वन्दितद्विद् सदैव सप्तैवोक्ता पापशीला नृशंसाः।

संभोग में मन लगाने वाले, विषमता रखने वाले, अत्यन्त अभिमानी, दान देकर आत्म प्रशंसा करने वाले, कृपण, असमर्थ होकर भी अपनी बहुत

बड़ाई करने वाले और सम्मान्य पुरुष से सदा द्वेष रखने वाले ये सात प्रकार के मनुष्य ही पापी और क्रूर कहे जाते हैं।

महाभारत के ७/१९८/१६ में लिखित है -

सदाऽनाथोऽशुभः साधुं पुरुषं क्षोप्तुमिच्छति।

दुष्ट और अनाथ पुरुष सदैव सज्जन पर आक्षेप दोषारोपण करने की इच्छा रखता है।

चाणक्य नीतिशास्त्र के तृतीय स्तवक १८८ में उक्त है -

रहस्य भेदं पैशुन्यं परदोषानुकीर्त्तनम्।
पारुष्यं कलहं चैव दूरतः परिवर्ज्जयेत्॥

किसी के रहस्य को प्रकट करना, निरर्थक बुराई करना, दूसरों के दोषों का कीर्त्तन, कठोर व्यवहार और झगड़ा इनका परित्याग सर्वथा करना चाहिये।

महाभारत के ८/३५/४५ में लिखित है -

आत्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दापरस्तवः।
अनाचरितमार्य्याणां वृत्तमेतत् चतुर्विधम्॥

वाणी द्वारा अपनी निन्दा व प्रशंसा तथा पराई निन्दा व प्रशंसा करना - इन चार प्रकार के आचरण को श्रेष्ठ पुरुष कभी नहीं करते।

मांस भोजन से हिंसा अवश्य होती है। मनुस्मृति के ५/४८ में इसका वर्णन है -

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यः तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥

जीवों की हिंसा किये बिना कहीं भी मांस उत्पन्न नहीं हो सकता है,

और जीवों की हिंसा कभी स्वर्ग प्राप्ति का साधन नहीं बन सकता, अपितु नरक प्राप्ति का साधन है। अतः मांस भक्षण छोड़ देना चाहिये।

महाभारत के १३/११४/९,१० में उक्त है -

त्रिकारणं निर्दिष्टं श्रूयते ब्रह्मवादिभिः।
मनोवाचि तथाऽऽस्वादे दोषा ह्येषा प्रतिष्ठिताः।
न भक्षयन्त्यतो मांसं तपोयुक्ता मनीषिणः॥

भीष्म युधिष्ठिर को कहे थे -

ब्रह्मवादी महात्माओं ने हिंसा दोष के तीन प्रधान कारण बतलाये हैं। मन-मांस खाने की इच्छा, वाणी-मांस खाने का उपदेश तथा आस्वाद-प्रत्यक्षरूप में मांस का आस्वाद लेना। ये तीनों हिंसा दोष के आधार हैं। इसलिये तपस्या में लगे हुये मनीषीगण कभी मांस नहीं खाते।

मनुस्मृति में उक्त है- ५/४९ -

समुत्पत्तिं च मांसस्थ बधबन्धो च विदेहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्वमांसस्थ भक्षणात्॥

मांस की उत्पत्ति और जीवों के बधबन्धन को समझकर, हिंसा के दोष को समझकर, सब प्रकार के मांस-भक्षण से निवृत्त होना चाहिये।

विष्णु धर्मपुराण में ३/२६९/५ में उक्त है-

अहिंसकस्तथा जन्तुर्मांसं वर्जयिता भवेत्।

मांस त्यागी होने से ही अहिंसक होता है।

महाभारत में १३/११५/३७ में उक्त है -

यो हि खादति मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम्।
हतानां वा मृतानां वा यथा हन्ता तथैव स॥

जीवित रहने वाले प्राणी चाहे मारे गये हों ,या स्वयं मर गये हों; उनके मांस को जो व्यक्ति खाता है, वह भले ही उन प्राणियों को नहीं मारता है; फिर भी उन प्राणियों का हत्यारा ही है।

महाभारत के १३/११५/३५ में उक्त है-

धनेन क्रयिको हन्ति खादक श्चोपभोगतः।
घातको वध बन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो बधः॥

खरीदने वाला धन के द्वारा, खाने वाला उपभोग के द्वारा और घातक व्यक्ति बध एवं बन्धन के द्वारा पशुओं की हिंसा करता है। इस प्रकार यह तीन तरह से प्राणियों का वध होता है।

महाभारत के १३/११५/४२ में लिखा है -

खादकस्य कृते जन्तून् यो हन्यात् पुरुषाधमः।
महादोषतरस्तत्र घातको न तु खादकः॥

जो मांस खाने वाले अन्य लोगों के लिये पशुओं की हत्या करता है। वह मनुष्यों में राक्षस है। क्योंकि घातक को जितना दोष लगता है मांस खाने वाले को उतना दोष नहीं लगता।

महाभारत के १३/११५/४५ में लिखित है -

आहर्त्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रय विक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते॥

जो मनुष्य पशु हत्या के लिये पशु पालता है, जो उसे मारने की अनुमति देता है, जो उसका बध करता है तथा जो खरीदता-बेचता, पकाता और खाता है, वे सबके सब खाने वाले ही माने जाते हैं, अर्थात् वे सब खाने वाले के समान पाप के भागी होते हैं।

मांस भक्षण निन्दनीय व वर्जनीय है।

महाभारत के १३/११५/२५ में उल्लेख है -

क्रव्यादान् विद्धि जिह्वानृत परायणान्॥

जो कुटिलता और असत्य भाषण में प्रवृत्त होकर मांस भक्षण किया करते हैं, उन्हें राक्षस समझो।

छान्दोग्योपनिषद् के २/१९ में लिखित है -

मज्जो नाश्नीयात्।

मांस न खाएं।

तैत्तिरीयक ब्राह्मण १/१/९/७१,७२ में लिखित है -

न मांसमश्नीयात्।

मांस नहीं खाना चाहिये।

महाभारत के १३/११५/४८ में लिखित है -

य इच्छेत् पुरुषोऽत्यन्तमात्मनो निरुपद्रवम्।
स वर्जयेत् मांसानि प्राणिनामिह सर्वशः॥

जो मनुष्य अपने आपको अत्यन्त उपद्रव रहित रखना चाहता हो, निर्विघ्न जीवन जीना चाहता हो, वह इस जगत में प्राणियों के मांस का खाना सर्वथा परित्याग करे।

महाभारत के १३/११५/५२ में उक्त है -

अभक्षणे सर्व सुखं मांसस्य मनुजाधिप।

मांस भक्षण न करने में ही सब प्रकार का सुख होता है।

मनुस्मृति के ५/१५ में उक्त है -

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते।
मत्स्यादः सर्वमांसादः तस्मान् मत्स्यान् विवर्ज्जयेत्।

जो जिसके मांस को भक्षण करता है, वह उसी का 'मांसाद' कहा जाता है, किन्तु मछली के मांस को भक्षण करने वाला तो 'सर्वमांसाद' सबके मांस का भक्षण करने वाला होता है, इस कारण से मछली के मांस को कभी न खाये।

विष्णु धर्मपुराण के ३/२५२/२१,२२ में उल्लेख है -

मांस भक्षयित्वाऽमुत्र यस्य मांसमिहादम्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

मैं जिसके मांस को यहाँ पर खाता हूँ, वह मुझे परलोक में खायेगा, विद्वान मांस शब्द का यही मांसत्व मांसपना अर्थात् मांस शब्द का अर्थ बतलाते हैं। अर्थात् मांस शब्द का अर्थ है - जो उसे खाता है, वह मरने के बाद दूसरे जन्म में उसको अपना भोजन बनाता है।

संन्यासी ब्रह्मचारी के लिए मद्य-मांस वर्ज्जनीय है -

संवर्त्त स्मृति के २/१७७ में उक्त है -

वर्ज्जयेन् मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुष्कानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥

ब्रह्मचारी मधु, मांस, सुगन्धित कपूर कस्तूरी आदि पदार्थ, फूलों की माला, गन्ना जामुन का रस, अचार, स्त्री सेवन और जीव हिंसा (किसी प्रकार जीवों को कष्ट पहुँचाना) छोड़ दे।

याज्ञवल्क्य स्मृति १/२/३३ में उक्त है -

मधु मांसञ्जनोच्छिष्ट शुक्त स्त्री प्राणिहिंसनम्।
भास्करालोकनाश्लील परिवादादि वर्जयेत्॥

मधु व मांस का सेवन, घृतादि से शरीर की मालिश तथा काजल से आँख का अञ्जन, गुरु के अतिरिक्त अन्य का जूठा भोजन खाना, कठोर वचन

बोलना, स्त्री सेवन, प्राणि बध, उदय तथा अस्त के समय सूर्य्य को देखना, अश्लील अवाच्य या असत्य भाषण, परदोषान्वेषण - इन सबका ब्रह्मचारी त्याग करें।

मनुस्मृति के ६/९ में उक्त है -

वर्जयेन्मधुमांसं च भौमानि कवचाणि च।

वानप्रस्थाश्रमी को चाहिए कि वह मधु, मांस, पृथ्वी में उत्पन्न छत्राक कुकुरमुत्ता का त्याग करे। इन्हें नहीं खाये।

महाभारत के १३/२२/२५ में लिखित है -

ब्रह्मचर्य्यात् परं तात मधुमांसस्य वर्जनम्।
मर्य्यादायां स्थितो धर्मः शमश्चैवास्य लक्षणम्॥

मांस और मदिरा का त्याग ब्रह्मचर्य से भी श्रेष्ठ है। वही उत्तम ब्रह्मचर्य्य है। वेदोक्त मर्य्यादा में स्थित रहना सबसे श्रेष्ठ धर्म है तथा मन एवं इन्द्रियों को संयम में रखना ही सर्वोत्तम पवित्रता है।

महाभारत के १३/११५/३५ में उक्त है -

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वस्त्ययनं महत्।
मांसस्याभक्षणं प्राहुर्नियताः परमर्षयः॥

नियम परायण महर्षियों ने मांस भक्षण त्याग को ही धन, यश, आयु व स्वर्ग की प्राप्ति का प्रधान उपाय एवं परम कल्याण का साधन बताया है।

महाभारत के १३/११५/७० में उक्त है -

मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः।
जन्म प्रभृति मद्यं च सर्वे ते मुनयः स्मृताः॥

जो धर्मात्मा पुरुष जन्म से ही इस जगत में शहद, मद्य और मांस का सदा के लिये परित्याग कर देता है, वे सबके सब मुनि जैसे माने जाते हैं।

महाभारत के १३/११५/१६ में लिखित है -

सर्व्वे वेदा न तत् कुर्य्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत।
यो भक्षयित्वा मांसानि पश्चादपि निवर्त्तते॥

जो पहले मांस खाता रहा हो और पीछे उसका परित्याग कर दे, उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसे सम्पूर्ण वेद और यज्ञ भी नहीं करा सकते।

महाभारत के १३/११५/४१ में उक्त है -

हिरण्यदानैर्गोदानै भूमिदानैश्च सर्वशः।
मांसस्याभक्षणे धर्मो विशिष्ट व्रतिन स्मृतिः॥

सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान से जो धर्म प्राप्त होता है, मांस का भक्षण न करने से उसकी अपेक्षा भी अधिक विशिष्ट धर्म की प्राप्ति होती है, ऐसा सुनने में आया है।

महाभारत के १३/११५/६३-६९ में उक्त है -

श्येनश्चित्तेन राजेन्द्र सोमकेन वृकेण च।
रैवते रन्तिदेवेन वसुना सृञ्जयेन च॥
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र नृपेण भरतेन च।
दुष्यन्तेन करुषेण रामालर्कनरैस्तथा॥
विरूपाख्येन निमिना जनकेन च धीमता।
ऐलेन पृथुना चैव तथैव च सुबाहुना।
इक्ष्वाकुणा शम्भुना च श्वेतेन सगरेण च॥
अजेन धुन्धुना चैव तथैव च सुबाहुना।
हर्य्यश्वेन च राजेन्द्र पुरा मांसं न भक्षितम्॥
ब्रह्मलोके च तिष्ठन्ति ज्वलमानाः श्रियान्विताः।
उपास्यमाना गन्धर्वैः स्त्री सहस्त्र समन्विताः॥
अथैतदुत्तमं धर्मम् अहिंसा धर्म लक्षणम्।
ये चरन्ति महात्मानो नाकपृष्ठे वसन्ति ते॥

श्येनचित्त, सोमक, वृक, रैवत, रन्तिदेव, वसु, संजय, अन्यान्य नरेश, कृप, भरत, दुष्यन्त, बरूथ, राम, अलर्क, नर, विरूपाख्य, मिलिन्द, बुद्धिमान् जनक, पुरुरवा, पृथु, वीरसेन, इक्ष्वाकु, शम्भु, श्वेतसागर, अज, धुन्धु, सुबाहु, हर्य्याश्व, क्षुप, भरत इन सब ने तथा अन्यान्य राजाओं ने भी मांस नहीं खाया था। वे सब नरेश अपनी कान्ति से प्रज्वलित होते हुए वहाँ ब्रह्मलोक में विराज रहे हैं। गन्धर्व उनकी उपासना करते हैं और सहस्त्रों दिव्यांगनाएं उन्हें घेरे रहती हैं। अतः यह अहिंसा रूप धर्म सब धर्मों से उत्तम है। जो महात्मा इसका आचरण करते हैं, वे स्वर्ग लोक में निवास करते हैं।

मदिरा हिंसक भावों का पोषण करती है-

ऋग्वेद के ८/२/१२ में उक्त है-

''हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदाक्षो न सुरायाम् ऊधर्न नग्ना जरन्ते''

जिस प्रकार दुष्ट मद से युक्त व्यक्ति परस्पर लड़ते हैं उसी प्रकार दिल खोलकर शराब पीने वाले लोग भी परस्पर लड़ते झगड़ते हैं तथा नंगों की भाँति निर्लज्ज होकर रातभर बड़बड़ाया करते हैं।

मनुस्मृति के ११/९६ में उक्त है -

अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत्।
अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः॥

मद्यपान से मतवाला ब्राह्मण अपवित्र मल-मूत्रादि से अशुद्ध नाली आदि में गिरेगा, वेदवाक्य का उच्चारण करेगा और निषिद्ध कर्म हिंसादि करेगा। अतएव मद्यपान नहीं करना चाहिए।

मदिरा मांस त्यागी अहिंसक है।

मनुस्मृति ११/९३ में उक्त है -

सुरां वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्मात् ब्राह्मण राजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥

सुरा (मदिरा) अन्नों का मल है और इसे खाने वाला पापी भी मल कहा जाता है, इस कारण से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों को सुरा नहीं पीना चाहिए।

अहिंसा के अतिरिक्त अन्य जो अनेक धर्म है, जैसे सत्य, अचौर्य्य, दया, दान प्रभृति की पूर्णता अहिंसा के बिना सम्भव नहीं है। अहिंसा पालन से सभी अन्य धर्मों का पालन सहज रूप से हो जाता है। सत्य, अपरिग्रह, दान, क्षमा आदि धर्म अहिंसा रुपी परम धर्म की शाखा-प्रशाखाएं है। इसका उदाहरण इस प्रकार है - महाभारत के ३/२०७/७४ में उक्त है -

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतहितं परम्।
अहिंसा परमो धर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठितः।
सत्ये कृत्वा प्रतिष्ठां तु प्रवर्त्तन्ते प्रवृत्तयः॥

अहिंसा और सत्यभाषण - ये समस्त प्राणियों के लिए अत्यन्त हितकारक हैं। अहिंसा सबसे महान् धर्म है परन्तु वह सत्य में ही प्रतिष्ठित है और सत्य के ही आधार पर श्रेष्ठ पुरुषों के सभी कार्य आरम्भ होते हैं।

महाभारत के १२/१६२/८९ में उक्त है -

सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः।
अमात्सर्यं क्षमा चैव ह्रीस्तितिक्षानसूयता॥
त्यागी ध्यानमथार्यत्वं धृतिश्च सततं स्थिरा
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारास्त्रयोदशः॥

सत्य, समता, दम (इन्द्रिय निग्रह), मत्सरता का अभाव, अनसूया, त्याग, परमात्मा का ध्यान, आर्यता (श्रेष्ठ आचरण) निरन्तर स्थिर रहने वाली धृति (धैर्य) तथा अहिंसा - ये तेरह सद्गुण सत्य के ही स्वरूप हैं। अहिंसा हिंसा की कसौटी पर ही सत्य-असत्य का निर्णय होता है। महाभारत के ३/२०९/४ में लिखित है-

यद् भूतहितमत्यन्तं तत् सत्यमिति धारणा।
विपर्ययकृतोऽधर्मः पश्य धर्मस्य सूक्ष्मताम्॥

धर्म व्याध ने कौशिक ब्राह्मण को कहा था-जिससे परिणाम में प्राणियों का अत्यन्त हित होता हो, वह वास्तव में सत्य है। इसके विपरीत जिससे किसी का अहित होता हो या दूसरे के प्राण जाते हों वह देखने में सत्य होने पर भी वास्तव में असत्य एवं अधर्म है। इस प्रकार विचार करके देखिए धर्म की गति कितनी सूक्ष्म है।

नारदीय पुराण के १/१६/२४ में वर्णित है-

अनृतं विद्धि विज्ञेयं सर्वश्रेयो विरोधितत्।

जो वचन सभी के कल्याण व हित का विरोधक होता है उसे असत्य जानना चाहिए।

महाभारत के ३/२१३/३१ में लिखा है-

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यं ज्ञानं हितं भवेत्।
यद् भूतहितमत्यन्तं तद् वै सत्यं परं मतम्॥

सत्य बोलना सदा कल्याणकारी है, सत्य सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान हितकारी होता है। जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित होता है उसे ही सत्य माना गया है।

श्रीमद्भागवत के ८/१९/४३ में उक्त है-

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे।
गो ब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥

स्त्रियों में, हास-परिहास के समय, विवाह में, आजीविका की रक्षा करने के लिए, प्राण संकट उपस्थित हो जाने पर, गौ या ब्राह्मणों के हित के लिए तथा किसी की हिंसा को रोकने में असत्य भाषण करना निन्दनीय नहीं माना गया है।

योगसूत्र के व्यास भाष्य २/३० में उक्त है -

परत्र स्वबोधसंक्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वंचिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिबन्ध्या वा भवेदिति। एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय। यदि चैवमपि अभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत् पापमेव भवेत्। तस्मात् परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात्।

अपने अनुभव ज्ञान को दूसरे के पास संक्रान्त करने के उद्‌देश्य से वाणी का प्रयोग किया जाता है वह सत्य तभी कहलायेगी यदि वह वंचना व भ्रान्ति से युक्त एवं प्रतिपादन - सामर्थ्यहीन न हो, सत्य वाणी समस्त प्राणियों के उपकार हेतु ही प्रवृत्त होती है, न कि प्राणिघात हेतु। यदि वह वाणी प्रयुक्त होकर प्राणि विद्यातक हो तो वह 'सत्य' नहीं होगी, पाप असत्य ही होगी।

इसलिए सोच समझकर सर्व प्राणिहितकारिणी सत्य भाषा ही बोलनी चाहिए।

महाभारत के ८/६९/३३ में उक्त है

अनृतां वा वदेद् वाचं न तु हिंसात् कथंचन।

किसी की प्राण रक्षा के लिए झूठ बोलना पड़े तो बोल दे। किन्तु उसकी हिंसा न होने दे।

याज्ञवल्क्य स्मृति के २/५/८३ में उक्त है-

वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र सक्ष्यनृतं वदेत्॥

जहाँ सत्य बोलने से चारों वर्णों में से किसी का वध होता हो, वहाँ साक्षी गवाह उनके रक्षा हेतु असत्य बोले।

हिंसक असत्य वचन सर्वथा त्यागने योग्य है।

शिवपुराण के १/१३/८० में उक्त है -

न वदेत् सर्वजन्तूनां हृदि रोषकरं बुधः।

ऐसी कोई बात किसी भी प्राणी के विषय में न कहे जिससे उसके हृदय में कोई रोष पैदा करे।

महाभारत के १२/२४०/९ में लिखा है-

वर्जयेदुशतीं वाचं हिंसायुक्तां मनोनुदाम्॥

व्यक्ति को चाहिए कि मन को पीड़ा देने वाली, हिंसायुक्त वाणी का प्रयोग न करे।

अहिंसक की वाणी प्रिय व हितकर होती है।

महाभारत के ३/२०७/८४-८५ में उक्त है-

सर्वभूतदयावन्तो अहिंसानिरतः सदा।
परुषं च न भाषन्ते सदा सन्तो द्विज प्रियाः॥

जो समस्त प्राणियों पर दया करते हैं, सदा अहिंसा धर्म के पालन करते और कभी किसी से कटु वचन नहीं बोलते, ऐसे सन्त सदा समस्त द्विजों के प्रिय होते हैं।

भागवत के ११/१९/३८ में कथित है -

नृतं च सुनृता वाणी कविभिः परिकीर्तितः।

सत्य व मधुर वाणी का ही नाम नृत है।

विष्णु पुराण के ३/४/१३ में उक्त है

परापवादं पैशुनानृतं च न भाषते।
अन्योद्वेगकरं वाऽपि पोष्यते तेन केशवः॥

जो व्यक्ति दूसरों की निन्दा, चुगली अथवा मिथ्या भाषण नहीं करता तथा ऐसा वचन भी नहीं बोलता, जिससे दूसरों को खेद हो, उससे निश्चय ही भगवान् केशव प्रसन्न रहते हैं।

विष्णु धर्म पुराण के ३/२३३/१७७ में उक्त है-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्म सनातनम्॥

सत्य जैसा देखा वैसा बोले, प्रियवचन बोले, पुत्र हुआ है, परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया है, बोले। सत्य भी यदि अप्रिय हो तो उसे न बोले; यही सनातन धर्म है, अनादि काल से चला आता हुआ धर्म है।

चाणक्य नीति के १६/११५ में उक्त है -

प्रियवाक्य प्रदानने सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥

प्रिय वाक्यों के बोलने से सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं। अत: प्रिय ही बोलना चाहिए, बोलने में दरिद्रता क्यों ?

ऋग्वेद के ६/४८/२९ में उक्त है -

सत्यं एवं प्रिय वाणी ही ऐश्वर्य देने वाली है।

प्रणीतिस्तु सूनृता॥

अहिंसक कटु वचन भी पीड़ादायक है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखित है (३/३५/६४)

दुर्वाक्यं दुःसहं राजन्स्तीक्ष्णास्त्रादपि जीविनाम्।
संकटेऽपि सतां वक्त्राद् दुरुक्तिर्नविनिर्गता॥

जीवों को कटुवचन तीक्ष्ण अस्त्र से भी दु:सह होता है। कितना ही बड़ा संकट क्यों न हो, सज्जनों के मुख से कभी बुरी बात नहीं निकलती है।

महाभारत के १२/२२९/९ में लिखित है-

उक्तश्च न वदिष्यन्ति वक्तारमहिते हितम्।
प्रतिहन्त न चेच्छन्ति हन्तारं वै मनीषिणः॥

श्रेष्ठ बुद्धि से सम्पन्न मनीषी पुरुषों से कोई कटुवचन कह दे तो भी उस कटुवादी पुरुष को बदले में वे कुछ नहीं कहते। वे अपना अहित करने वाले का भी हित ही चाहते हैं। तथा जो उन्हें मारता है उसे भी बदले में मारना नहीं चाहते हैं।

मनु स्मृति के ६/४७ में उक्त है-

अतिवादांशस्तितिक्षेत नावमन्येत कश्चन।
न चेमं वेदमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित्॥

सन्यासी व्यक्ति मर्यादा के बाहर भी किसी की कही हुई बात को सहन करे, किसी का अपमान न करे और नश्वर शरीर को धारण कर किसी के साथ वैर न करे।

महाभारत के १२/२७८/६ में लिखित है-

अतिवादांस्तितिक्षेत नाभिमन्येत कञ्चन।
क्रोध्यमानः प्रियं ब्रूयादाक्रुष्टः कुशलं वदेत्॥

यदि कोई अपने प्रति अमर्यादित बात कहे, निन्दा या कटु वचन सुनाये तो मुमुक्षु पुरुष उसके उन वचनों को चुपचाप सह ले। किसी के प्रति अहंकार या घमण्ड प्रकट न करे। कोई क्रोध करे तो भी उससे प्रियवचन ही बोले। यदि कोई गाली दे तो भी उसके प्रति हितकर वचन ही मुँह से निकाले।

महाभारत के १/२७/१० में उक्त है-

सदाऽसतामविवादांस्तितिक्षेत् सतां वृत्तं चाददीतार्यवृत्तः।

दुष्ट लोगों के कही हुई अनुचित बातें सदा सह लेनी चाहिए, तथा साधु पुरुषों के व्यवहार को ही अपनाते हुए श्रेष्ठ सदाचार से सम्पन्न होना चाहिए।

सन्तोष और अपरिग्रह – ये दोनों धर्म एक ही प्रवृत्ति के दो रुप हैं।

इन दोनों का पालन तभी सम्भव हो सकता है जब असन्तोष, तृष्णा, परिग्रह भावना जैसी हिंसक प्रवृत्तियों नियंत्रण हो और उनसे विरति हो। असन्तोष की हिंसकता को इंगित करने वाले कुछ शास्त्रीय वचन लिखते हैं -

महाभारत में उक्त है १/१३९/७७ -

नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्मदारुणम्।
ना हत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्॥

राजा या कोई व्यक्ति मछलीमार की तरह जब तक किसी प्राणी के मर्म का उच्छेद नहीं करता तथा अत्यन्त क्रूर कर्म कर किसी का प्राण बध नहीं करता, तब तक अत्यधिक सम्पत्ति नहीं प्राप्त कर सकता।

जैसे मछलीमार मछली का पेट चीर कर तथा क्रूरता से उसे मारकर ही उसके पेट से हीरे मोती आदि प्राप्त कर पाता है, वैसे ही कोई भी व्यक्ति रत्न या सम्पत्ति का अर्जन क्रूरता व हिंसा का सहारा लेकर ही कर सकता है।

महाभारत के १२/२०/७ में लिखित है-

ईहेत धनहेतोर्यस्तस्यानीहा गरीयसी।
भूयान् दोषो हि वर्धेत यस्तं धनमुपाश्रयेत्॥

जो धन के लिए विशेष चेष्टा करता है, वह वैसी चेष्टा न करे-यही सबसे अच्छा है, क्योंकि जो उस धन की उपासना करने लगता है, उसके महान दोषों हिंसादि अवगुणों की वृद्धि हो जाती है।

हिंसात्मक काले धन का अशुभ फल होता है।

विष्णु स्मृति में गृहस्थाश्रम धर्म वर्णन प्रकरण में उक्त है-

अथ गृहाश्रमिणस्त्रिविधोऽर्थो भवति। शुक्लः शबलोऽसितश्चार्थः। शुक्लेनार्थेन यदैहिकं करोति तद्देवमादापयति यश्च शबलेन तन्मानुष्यम् यत् कृष्णेन तत्तिर्यकत्वम्। स्ववृत्त्युपार्जितं सर्वं सर्वेषां शुक्लम्।

अनन्तरवृत्त्युपातं शबलम्। स्वमान्तरित वृत्युपात्तपात्तश्च कृष्णम् क्रमागतं प्रीतिदायं प्राप्तश्च सहभार्यया। अविशेषेण सर्वेषां धनं शुक्लं प्रकीर्त्तितम्। उत्कोच शुक्ल सम्प्राप्तमविक्रयस्य विक्रयेन। कृतोपाकारादाप्तञ्च शबलं समुदाहृतम्। पार्श्विक दद्युत चौर्य्याप्त प्रतिरुपक साहसम्। ब्याजेनोपार्जितं यश्च तत् कृष्णं समुदाहृतम्। यथाविधमवाप्नोति स फलं प्रेत्य चेह च।

गृहस्थाश्रम में रहने वाले मनुष्य के पास तीन प्रकार का अर्थ धन होता है। एक शुक्ल, दूसरा शबल, तीसरा कृष्ण। शुक्लधन से जो अपना शारीरिक कृत्य करता है वह देवयोनि को प्राप्त करता है। शबल धन से दैहिक आवश्यकता को चलाता है वह मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करता है, जो कृष्ण अर्थ काले धन से अपना देह सम्बन्धी व्यय पूरा करता है वह तिर्य्यक योनि में जन्म लेता है। अपनी उचित वृत्ति के द्वारा अर्जित धन शुक्ल नाम से प्रसिद्ध होता है। अनन्तर वृत्ति-मुख्य वृत्ति से पृथक ऊपरी आमदनी से अर्जित धन शबल धन होता है। अनन्तर वृत्ति लुक छिप कर अनुचित उपायों से कमाया हुआ धन कृष्ण काला कहा जाता है। पैतृक परम्परागत क्रम से मिला हुआ, प्रीतिपूर्वक दिया हुआ और भार्या के साथ प्राप्त धन सामान्य रूप से सबका शुक्ल धन होता है। रिश्वत आदि से प्राप्त और न बिकने योग्य वस्तु के विक्रय करने से मिला हुआ तथा जिसकी भलाई कर दी उससे उपलब्ध धन शबल नाम से कहा गया है।

पार्श्विक जादूगरी, द्युत, जुआ और चोरी से प्राप्त एवं प्रतिरुपक, नकली माल तैयार करना तथा साहस, हिंसक कार्य से उपलब्ध और शोषक वृत्ति से, पूर्ण ब्याज से उपार्जित धन कृष्ण कहा गया है। मनुष्य जिस प्रकार के धन से जो कुछ भी करता है, उसका फल यहाँ मरने के बाद उसे उसी प्रकार का, काले धन से काला उग्र भयंकर फल, शुक्ल धन से सौम्य फल आदि मिलता है।

दया, करुणा, अहिंसा, अहिंसा रुपी बीज में उत्पन्न वृक्ष की शाखा प्रशाखाएँ हैं। दया, करुणा, अनुकम्पा के भाव को विकसित किए बिना

अहिंसक होने की कल्पना नहीं की जा सकती है।

इस विषय में कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

महाभारत के १३/१४४/९-१० में उक्त है -

सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु।
त्यक्त हिंसा समाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

जो सब प्राणियों में दया करने वाले तथा सब जीवों के विश्वासपात्र होते हैं, और जिन्होंने हिंसामय आचरण को छोड़ दिया है, इस प्रकार व्यक्ति स्वर्ग जाने के योग्य है।

स्कन्द पुराण १/२/५५/१२ में उल्लेख है -

आत्मवत् सर्वभूतेषु यो हिताय प्रवर्तते।
अहिंसैषा समाख्याता वेद स विहित च या॥

सभी प्राणियों में आत्मवत् दृष्टि रखते हुए उनका हितकारी कार्य करना - ''यही अहिंसा है'' जो 'वेद' में प्रतिपादित है।

महाभारत के १२/१६६/८ में लिखित है-

न हि प्राणात् प्रियतरे लोके किंचन विद्यते।
तस्माद् दयान्नरः कुर्याद् यथाऽऽत्मनि तथा परे॥

जगत् में अपने प्राणों से अधिक प्रिय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इसलिए मनुष्य जैसे अपने ऊपर दया चाहता है, उसी तरह दूसरों पर भी दया करे।

दया, करुणा, सौहार्द एकार्थ में प्रयोग होता है-

कूर्मपुराण के २/१५/३१ में उक्त है-

स्वदुःखस्विह कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदात्।
दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य साधनम्॥

दूसरों के दुःख में अपने जैसा दुःख समझना और उनके प्रति करुणा–सौहार्द भाव प्रकट करना 'दया' है, जो धर्म का साक्षात् साधन है।

श्रीमद्भागवत के १०/४/४१ में लिखित है–

श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरे स्तनूः

श्रद्धा, दया, तितिक्षा एवं क्रतु सत्कर्म ये भगवान् हरि के शरीर हैं।

प्राणीवध से निवृत्त होना दया है–

महाभारत के १२/१६२/९–१० में उक्त है–

परासुता क्रोधलोभादभ्यासाञ्च प्रवर्त्तते।
दयया सर्वभूतानां निर्वेदात् सा निवर्तते॥

क्रोध और लोभ से तथा उनके अभ्यास से परासुता दूसरों को मारने की इच्छा होती है, सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति दया से और वैराग्य से वह निवृत्ति होती है।

वाल्मिकी रामायण के ५/११३/४५ में लिखित है –

पापानां वा शुभानां वा वधार्हानामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥

कोई पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वध के योग्य अपराध करने वाला ही वे क्यों न हो, श्रेष्ठ पुरुष को चाहिए कि उन सब पर दया करे, क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जिससे कभी अपराध हुआ या होता ही न हो।

महाभारत १३/११३/५ में उक्त है–

अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः।
आत्मनः सुखमन्विच्छन् स प्रेत्य न सुखी भवेत्॥

जो मनुष्य अपने को सुख देने की इच्छा से अहिंसक प्राणियों को डंडे

से मारता है, वह कभी परलोक में सुखी नहीं होता है।

पालतू पशुओं के प्रति दयापूर्वक व्यवहार करने का विधान पराशर स्मृति ९/३१ में है -

रोधनं बन्धन चैव भार प्रहरणं तथा।
दुर्ग प्रेरणं योक्त्रं च निमित्तानि वधेषु षट्॥

घेरकर रोकना, बांधना, मार डालना, भार लादना, आघात करना, कठिन स्थानों पर चरने के लिए ले जाना, जुए में जोतना- ये छैः कर्म बध, मृत्यु के कारण होते हैं। इन कार्य्यों में बैल के बध के तुल्य पीड़ा होने की सम्भावना रहती है।

आपस्तम्व स्मृति ३/२०-२१ में उक्त है-

द्वौ मासौ दापयेद्, वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत्।
द्वौ मासावेकवेलायां शेषकाले यथारुचिः॥

व्याई हुई गौ का दूध दो मास तक बछड़े को पिलावे और इसके बाद दो मास तक केवल दो स्तनों का ही दूध लेवे अर्थात् दुहे। दो मास तक केवल एक समय दिन में या सायंकाल केवल एकबार ही दूध का दोहन करे, बाद में अपनी इच्छा के अनुसार दूध लिया जा सकता है, अर्थात् व्याई हुई गो का सारा दूध निकालने पर उसका बछड़ा भूखा रह सकता है। जिससे उस गौ को पीड़ा हो सकती है। अतः अहिंसक व्यक्ति ऐसा हिंसक कार्य न करे।

अथर्ववेद् के १०/९/४ में उक्त है -

यः शतौदनां पचति कामप्रेण कल्पते।

जो सैकड़ों लोगों को अन्न भोजन देने वाली शतौदना गौ का पालन-पोषण करता है वह अपने संकल्पों को पूर्ण करता है।

ब्रह्मपुराण ४/२/१६५ में उक्त है-

यः कुक्कुटानि वध्नाति मार्जारान् सूकरांस्तथा।
पक्षिणश्च मृगाञ्छागान् सोऽप्येनं नरकं व्रजेत्॥

जो व्यक्ति मुर्गे, बिल्ली, सूअर, पक्षी, मृग, बकरी आदि प्राणियों को बाँधकर रखता है, वह भी घोर नरक में जाता है।

महाभारत के १२/२६२/४३-४५ में उक्त है -

अदंशमशकं देशे सुख संवर्धितान् पशून्।
तांश्च मातुः प्रियाञ्ज्ञानन्नोक्रम्य बहुधा नराः॥
बहुदंश कुलान् देशान् नयन्ति बहुकर्दमान्।
वाह सम्पीड़िता धुर्यः सीदन्ति विधिना परे।
न मन्ये भ्रूणहत्याऽपि विशिष्टा तेन कर्मणा॥

तेल, घी, शहद और दवाओं की बिक्री करने से क्या हानि है। बहुत से मनुष्य जो डांस और मच्छरों से रहित देश में उत्पन्न और सुख से पले हुए पशुओं को यह जानते हुए भी कि ये अपनी माताओं के बहुत प्रिय हैं और इनके बिछुड़ने से उन्हें बहुत कष्ट होगा, जबरदस्ती आक्रमण करके ऐसे देशों में ले जाते हैं जहाँ डांस, मच्छर और कीचड़ की अधिकता होती है। कितने ही बोझ ढोने वाले पशु भारी भार से पीड़ित हो लोगों द्वारा अनुचित रूप से सताये जाते हैं। मैं समझता हूँ कि उस क्रूर कर्म से बढ़कर भ्रूण हत्या का पाप भी नहीं है।

अथर्ववेद में उक्त हैं - १०/९/४ -

यः शतौदनो पचति कामप्रेण सकल्पते

जो सैकड़ों लोकों को अन्न भोजन देने वाली शतौदना गौ का पालन पोषण करता है, वह अपने संकल्पों को पूर्ण करता है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखित है- २/३०/५४-५५ -

दण्डेन ताडयेद् यो हि वृषं च वृषवाहकः।
मृत्युद्वारा स्वतन्त्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते॥
प्रतप्त तैलकुण्डे च स तिष्ठति चतुर्युगम्।
गवां लोम प्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम्॥

जो किसान इस पुण्यक्षेत्र भारत में स्वयं अपने या नौकर द्वारा डण्डे से बैल को पीटता है, वह चारों युगों तक प्रतप्त तैल कुण्ड में रहता है। अनन्तर उस बैल के शरीर पर जितने रोएँ होते हैं उतने वर्षों तक वह बैल होता है।

ब्रह्मपुराण के ४८/११७-११८ में लिखा है -

विषमं वाहयेद् यस्तु दुर्बलं सबलं तथा।
स गो हत्यासमं पापं प्राप्नोतीह न संशयः॥
यो वाहयेद् बिना सस्यं खादन्तं गां निवारयेत्।
मोहात्तृणं जलं वापि स गो हत्या समं लभेत्॥

जो व्यक्ति दुर्बल या सबल बैल को विषम, ऊबड़-खाबड़ जगह में जोतता है, भूखे बैल को जोतता है, या अनजाने में घास खाने व जल पीने से बैल को रोकता है उसे भी गो हत्या का पाप लगता है।

पुलस्त स्मृति में उक्त है २/८-१०

अष्ट गव्यं धर्महलं षड्गवं वृत्ति लक्षणम्।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसवत्॥
द्विगवं वाहयेत् पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम्।
षड्गवं तु त्रिऽष्टाभि पूर्ण तु वाहयेत्॥
नाप्नोति नरकं त्वेवं वर्त्तमानस्तु वै द्विजः॥

आठ बैलों का हल धर्महल उत्तम श्रेष्ठ होती है और छैः बैलों से वृत्ति आजीविका चलाने जैसा होता है। चार बैलों से निर्दयी लोकों के, दो बैलों से गौ हत्या करने वालों का हल होता है। दो बैलों को दो प्रहर तक, चार बैलों को मध्याह्न तक, छः बैलों की तीन प्रहर तक तथा आठ बैलों से पूरे दिन भर जोते।

इस भाँति बैलों को अनुचित पीड़ा न देते हुए जो द्विज कृषि करता है, वह नरक में नहीं जाता है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के २/५१/५८-६७ में उक्त है -

ब्रह्महत्या समं पापं तन्नित्यं ताड़ने।
वृषपृष्ठे भारदानात् पापं तद् द्विगुणं भवेत्॥
सूर्यतापे वाहयेद् यः क्षुधितं तृषितं वृषम्।
ब्रह्महत्याशतं पापं लभते नात्र संशयः॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं विप्राणां वृषवाहिनाम्।
पितरो नैव गृह्णन्ति तेषां श्राद्धं च तर्पणम्॥
देवता नहि गृह्णन्ति तेषां पुष्पं फलं जलम्।
ददादि यदि दम्भेन विपाताय प्रकल्पते॥
यो भुंक्ते कामतोऽन्नं च ब्राह्मणो वृषवाहिनाम्।
नाधिकारो भवेत् तेषां पितृदेवार्चने नृप॥
लालाकुण्डे वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
विष्ठा भक्ष्यं मूत्रं जलं तत्र तस्य भवेद ध्रुवम्॥
त्रिसन्ध्यं ताडयेत् तं च शूलेन यमकिंकरः।
उल्कां ददाति मुखतः सूच्या कृन्तति संततम्॥
षष्टि-वर्ष-सहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्।
ततः काकः पञ्च जन्म स्वयैवं वक एव च॥
पंच जन्मसु गृध्रश्च श्रृगालः सप्त जन्मसु।
ततो दरिद्रः शूद्रश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः॥

बैलों को उसके कार्य में नित्य मारने पीटने से ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है और उनके ऊपर भार-बोझ लादने से उसका दुगुना पाप लगता है। इस प्रकार सूर्य के प्रचण्ड धूप में जो भूखे-प्यासे बैलों को अपने जोतने लादने के काम में लगाये रहता है उसे सौ ब्रह्महत्या के समान होता है इसमें संशय नहीं है। उन वृषवाही, बैलों द्वारा जोतने लादने के काम करने वाले ब्राह्मणों का

अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है तथा उनके श्राद्ध-तर्पण को पितर लोक ग्रहण नहीं करते हैं। देवता भी उनका फूल, फल एवं जल ग्रहण नहीं करते हैं। जो ब्राह्मण स्वेच्छा से वृषवाहकों का अन्न खाता है, उसे पितृकार्य एवं देवकार्य पूजनादि में अधिकार भी नहीं रहता है। इस कारण चन्द्रमा और सूर्य के समय तक उसे लाला लार कुण्ड नरक में रहते हुए विष्ठा भोजन और मूत्र पान निश्चित ही करना पड़ता है। यमराज के सेवक शूल के द्वारा दोनों संध्याओं में उसे ताड़ना देते हैं, मुख में जलती लकड़ी डाल देते हैं और सुई से शरीर से निरन्तर छेदते रहते हैं। इसके पश्चात् वह साठ सहस्त्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा, पाँच जन्मों तक कौआ और बगुला, पाँच जन्मों तक गीध और सात जन्म सियार होता है। अनन्तर दरिद्र और महारोगी शूद्र होकर उसके पश्चात् कहीं शुद्ध हो पाता है।

महाभारत के १३/१४५ में लिखित है -

ये पुरा मनुजा भूत्वा घोरकर्मरतस्तथा।
पशु पुंस्त्वोपघातेन जीवन्ति च रमन्ति च॥
एवं युक्त समाचाराः काल धर्म गतास्तुते।
दण्डिता यमदण्डेन निरयस्थश्चिरं प्रिये॥

जो मनुष्य पहले भयंकर कर्म में तत्पर होकर पशु के पुरुषत्व का नाश करने अर्थात् पशुओं को बधिया करने के कार्य द्वारा जीवन निर्वाह करते और उसी में सुख मानते हैं, ऐसे आचरण वाले मनुष्य मृत्यु को पाकर यमदण्ड से दण्डित हो, चिरकाल तक नरक में निवास करते हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखित है २/३०/१७२-१७३ -

आहारं कुर्वतीं गां च पिबन्तीं यो निवारयेत्।
दण्डैर्गास्ताड़येत् मूढो यो विप्रो वृषवाहकः।
दिने दिने गवां हत्यां लभते नात्र संशयः॥

जो व्यक्ति खाती हुई या पीती हुई गौ को रोकता है और जो विप्र

दण्डों से गौ या बैल को मारता पीटता है, गाड़ी या बैल में जोतता है उसे प्रतिदिन गो हत्या का दोष लगता है, इसमें सन्देह नहीं है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में उक्त है-

वृषक्षुद्रपशूनां च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत्।
साधारणस्यापलापी दासी गर्भ विनाशकृत॥
पितृ पुत्र स्वसृभ्रातृदम्पत्याचार्य शिष्यकाः।
एषामपतिता योन्य त्यागी च शत दण्डभाक्॥

बैल एवं बकरे छोटे पशुओं को बाँझ बनाने वाला, साधारण वस्तु के विषय में भी ठगी-वंचना करने वाला, दासी के गर्भ को गिराने वाला, पिता को त्यागने वाला, पत्नी को तलाक देने वाला पति, पति को तलाक देने वाली पत्नी आदि सभी सौ पण आर्थिक दण्ड के भागी होते हैं।

पराशर स्मृति में उक्त है २/४

स्थिराङ्ग नीरुजं दृप्तं सनर्दं षण्ढवर्जितम्।
वाहयेद्दिवस्यार्द्धं पश्चात् स्नानं समाचरेत्॥

जिस बैल के अंग दृढ़ हों, जो रोग रहित हो, दर्प से भरा हो, गर्जना करता हो, और बधिया न हो-ऐसे बैल को आधा दिन ही जोते, बाद में स्नान करे।

ब्रह्मपुराण ११७/५२ में लिखित है-

पशूश्च ये वै बध्नन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः।
प्रकीर्ण मैथुना ये च क्लीबा जायन्ति वै नराः।

जो व्यक्ति पशुओं को बाँधकर रखते हैं, गुरु पत्नी से समागम करते हैं, जहाँ कहीं भी व्यभिचार करते हैं, वे मरकर दूसरे जन्म में नपुंसक होते हैं।

आपस्तम्ब स्मृति में लिखित है १/२५-२६ -

न नारिकेल बालाभ्यां न मुञ्जेन न चर्मणा।
एभि र्गास्तु न बध्नीयाद् बद्ध्वा परवशो भवेत्।
कुशैः काशैश्च बध्नीयाद् वृषभं दक्षिणा मुखम्॥

नारियल के बने हुए रस्सों से, बालों की रस्सी से, मूंज की और चमड़े की रस्सी से गौ बैल को नहीं बाँधना चाहिए क्योंकि ये कठोर होती हैं। कुश या घास की बनी हुई रस्सियों से ही बैलों को दक्षिणाभिमुख कर बाँधना चाहिए।

शिवपुराण में २/५/६०-१६ में दयाधर्म का श्रेष्ठत्व कहा गया है।

धर्मो जीव दया तुल्यो न क्वापि जगतीतले।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः॥

इस जगत् में जीवदया के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसलिए सब प्रकार के प्रयत्न से जीव दया करनी चाहिए।

महाभारत के ३/३१३/९० में उक्त है-

दया सर्व सुखैषित्वम्।

सबके सुख की इच्छा रखना ही उत्तम दया है।

पद्म पुराण के ५/१०२/१५ में लिखित है

न दया सदृशो धर्मो न दया सदृशो तपः।
न दया सदृशं दानं न दया सदृशः सखा॥

दया के समान न कोई धर्म है, न कोई तप है, न ही दान है और न कोई मित्र है।

महाभारत के ३/३१३/७६ में लिखा है -

आनृशंस्यं परो धर्मः।

लोक में '**दया**' श्रेष्ठ धर्म है।

मनुस्मृति १३/२३/९२ में उक्त है-

खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा।
संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च॥

गधा, कुत्ता, मृग, हिरन, हाथी, अज, बकरी, भेड़, मछली, सांप और भैंसा इनमें से किसी को भी मारना मनुष्य को वर्णसंकर के दोष से दूषित करने वाला होता है।

गरुड़ पुराण के १/११५/३५ में लिखित है-

ये नाऽत्मना न च परेण च बन्धुवर्गे।
दीने दयां न कुरुते न च मर्त्यवर्गे॥
किं तस्य जीवित फलं हि मनुष्य लोके।
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते॥

जो स्वयं दूसरे प्रकार के सगे सम्बन्धियों, दीनों और प्राणियों पर दया नहीं करता है, इस संसार में उसके जीवित रहने का फल ही क्या है। यों तो कौआ भी दूसरों द्वारा दी गई बलि से पेट पालता हुआ बहुत दिनों तक जीवित रहता है।

पद्म पुराण के २/६/१४ में उक्त है-

अनाथं विकलनं दीनं रोगार्तं वृद्धमेव च।
नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते वै निरयगामिनः॥

जो लोक अनाथ, विकलांग, दीन, रोगी व वृद्ध व्यक्तियों पर अनुकम्पा नहीं करते वे मूढ़ लोक नरक में जाते हैं।

शरणागत की रक्षा करना उत्तम धर्म है, महाभारत के १/१६०/१० में उक्त है-

आगतस्य गृहं त्यागस्तथैव शरणार्थिनः।
याचमानस्य च बधो नृशंसो गर्हिती बुधैः॥

घर पर आये हुए शरणार्थी का त्याग और अपनी रक्षा के लिए याचना करने वालों का वध-यह विद्वानों की राय में अत्यन्त क्रूर एवं निन्दित कर्म है।

वायुपुराण के १४/९२ में उक्त है -

शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालोऽधमोजनः।

जो शरणागत को छोड़ देता है, उसे शरण नहीं देता है, वह व्यक्ति चाण्डाल है, अधम है।

क्षमा भी अहिंसा ही है, महाभारत के १३/१४२/३२ में उक्त है-

शान्तो दान्तो जितक्रोधो धर्मभूतोऽविहिंसकः।
धर्मे रतमना नित्यं नरो धर्मेण युज्यते॥

क्षमाशील, जितेन्द्रिय, क्रोधजयी, धर्मनिष्ठ व्यक्ति अहिंसक होता है और सदा धर्म परायण मानव ही धर्म के फल का भागी होता है।

महाभारत के ४/१६ में उक्त है-

क्षमा धर्मो ह्यनुत्तमः।

क्षमा सबसे उत्तम धर्म है।

क्षमा सत्पुरुष एवं वीर का अलंकार है।

वाल्मिकी रामायण के १/३३/७ में उक्त है -

अलंकारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा।

स्त्री हो या पुरुष, उसके लिए क्षमा ही आभूषण है। अहिंसात्मक प्रवृत्ति ही क्षमा है।

विष्णपुराण के १/१२/१५७ में उक्त है -

वाचा मनसि काये च दु:खेनोत्पादितेन च।
न कुप्यति न चाप्रीति साक्षमा परिकीर्तिता॥

कोई व्यक्ति दु:ख दे तो भी मन-वचन व शरीर में क्रोध या अप्रसन्नता प्रकट न करना यही क्षमा है।

महाभारत के ३/३१३/८२ में लिखित है-

क्षमा द्वन्द्व सहिष्णुत्वम्।

मान अपमान सुख दु:ख अनुकूलता प्रतिकूलता - इन द्वन्द्वों को सहन करना ही क्षमा है।

महाभारत के ५/३३/५२ में उक्त है -

यदा हि क्षमते सर्वं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।

जब मनुष्य सब कुछ सहन कर लेता है तब वह ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है।

विदुरनीति १/५२ में उक्त है-

क्षमैका शान्तिरुत्तमा।

एकमात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

महाभारत में ३/२९/४४ में उक्त है-

येषां मन्युर्मनुष्याणां क्षमयाऽभिहतः सदा।
तेषां परतरे लोकास्तस्मात् क्षान्तिः परामता।

जिन मनुष्यों का क्रोध सदा क्षमाभाव से दबा रहता है उन्हें सर्वोत्तम लोक प्राप्त होते हैं। क्षमा सबसे उत्कृष्ट मानी गयी है।

महाभारत के १३/२३/२२ में उक्त है-

क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोद्यताः।
मङ्गलाचार सम्पन्नाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥

जो क्षमावान, धीर, धर्मकार्य के लिए उद्यत रहने वाले और मांगलिक आचार से सम्पन्न हैं, वे पुरुष स्वर्गगामी होते है।

दान धर्म भी अहिंसा धर्म का सहयोगी है। मनुस्मृति के ४/२४६ में उक्त है-

दृढ़कारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन्।
अहिंस्त्रो दमदानाभ्यां जयेत् स्वर्गं तथाव्रतः॥

दृढ़कर्ता (विघ्नादि के आने पर भी प्रारम्भ किये गये कार्य को पूरा करने वाला), निष्ठुरता से रहित, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों को सहने वाला, क्रूर आचरण वालों का साथ नहीं करने वाला, ऐसा अहिंसक व्यक्ति दम इन्द्रिय संयम तथा दान का व्रत धारण कर उक्त व्रत के प्रभाव से स्वर्ग को जीत लेता (प्राप्त करता) है।

श्रीमद्भागवत के ११/१९/३७ में लिखित है-

दण्डन्यासः परं दानम्।

सब प्राणियों के प्रति द्रोह व हिंसक वृत्ति का त्यागना ही परम दान है अर्थात् उत्तम दान अहिंसा करना ही है। मौलिक सनातन धर्म ही दान है।

महाभारत के १४/९१/३३,३४ में उक्त है-

एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृति क्षमा।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत् सनातनम्॥

दान, प्राणिमात्र के प्रति दया करना, क्षमा, धृति, सत्य, ब्रह्मचर्य ये धर्म हैं, तथा महायोग हैं, सनातन धर्म के ये सनातनमूल हैं।

महाभारत के ३/३३/४६ में लिखित है-

दानं यज्ञाः सतां पूजा वेद धारणमार्जवम्।

एष धर्मः परो राजन् बलवान् प्रेत्य चेह च॥

इहलोक और परलोक - दोनों जगह, यज्ञ, सम्मान, पूजा, वेद स्वाध याय, सरलता आदि की तरह दान एक उत्तम एवं प्रबल धर्म है।

दाता उत्तम अहिंसक होता है।

महाभारत के १४/९१/२५, २६, २४ में वर्णित है -

तेन दत्तानि दानानि पापेनाशुद्ध बुद्धिनां।

तानि सर्वाण्यनादृत्य नश्यन्ति विपुलान्यपि॥

तस्याधर्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मनः।

दानेन कीर्त्ति र्भवति न प्रेत्येह च दुर्मतिः॥

धर्म वै तंसिकी यस्तु पापात्मा पुरुषाधमः।

ददाति दानं विप्रेभ्यो लोक विश्वास कारणम्॥

अशुद्ध बुद्धि वाले पापी पुरुष द्वारा कितना ही अधिक दान दिया जाय वह सारा का सारा अनादृत तिरस्कृत होता हुआ नष्ट, व्यर्थ हो जाता है।

अधर्म में प्रवृत्त दुर्बुद्धि, दुरात्मा व हिंसा परायण व्यक्ति दान करने पर भी इह लोक व परलोक दोनों में कीर्ति नहीं प्राप्त करता है। वह पापात्मा वानराधम धर्म का तो ढोंग करता है। ब्राह्मणों आदि को दान तो इसलिए देता है ताकि लोक में उसके अपने धर्मात्मा होने का विश्वास जम जाए।

अहिंसा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति अनुकम्पा दान एवं अभयदान से होती है।

महाभारत के १३/१४५ में उक्त है-

अनाथान् पोषयेद् यस्तु कृपणान्धक पंगुकान्।
स तु पुण्यफलं प्रेत्य लभते कृच्छ्रमोक्षणम्।
वेदगोष्ठाः सभाः शाला भिक्षूणां च प्रतिश्रयम्।
यः कुर्य्याल्लभते नित्यं नरः शुभं फलम्॥

महाभारत १३/६३/९ में उक्त है-

कुटुम्बिने सीदते च ब्राह्मणाय महात्मने।
दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनी भूतिमिच्छता।

कल्याण की इच्छा रखने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह अन्न के लिए दु:खी बाल बच्चों वाले महामनस्वी ब्राह्मण को और भिक्षा माँगने वाले को भी अन्नदान करे।

महाभारत के १३/५९/३-४ में उक्त है -

अभयं सर्वभूतेभ्यो व्यसने चाप्यनुग्रहः।
यच्चाभिलषितं दद्यात् तृषितामभियाचते।
दत्तं मन्येत यद्दत्त्वा तद्दानं श्रेष्ठमुच्यते।
दत्रं दातारमन्वेति यद् दानं भरतर्षभ॥

सम्पूर्ण प्राणियों को अभय देना, संकट के समय उनपर अनुग्रह करना, याचक को उसकी अभीष्ट वस्तु देना, तथा प्यास से पीड़ित होकर पानी माँगने वाले को पानी पिलाना उत्तम दान है और जिसे देकर दिया हुआ मान लिया जाय अर्थात् जिसमें कहीं भी ममता की गन्ध न रह जाय, वह दान श्रेष्ठ कहलाता है, वह दान दाता का अनुसरण करता है।

कूर्म पुराण के २/२६/५० में उक्त है -

औषधं स्नेहमाहारं रोगिनं रोगशान्तये।
ददानो रोग रहितः सुखी दीर्घायुरेव च॥

रोगी को रोग की शान्ति के लिए औषधि व स्निग्ध आहार देने वाला व्यक्ति नीरोग, सुखी एवं दीर्घायु होता है।

विष्णुधर्म पुराण में लिखित है ३/३१५/४ –

अन्नं हि जीवितं लोके प्राणाश्चान्ननिबन्धनाः ॥
अन्नदः प्राणदो लोके सर्वदश्च तथाऽन्नदः ॥

अन्न इस लोक में 'जीवन' स्वरूप है। अन्न पर प्राण टिके रहते हैं। इसलिए अन्न का दान करने वाला व्यक्ति लोक में 'प्राणदाता' होता है। अन्नदाता सब कुछ देने वाला है। अर्थात् वह सब प्रकार के दानों के फल को प्राप्त करता है।

अहिसंक दयालु होता है, करुणा स्वरूप होता है। उसकी प्रवृत्ति उन कार्यों में होनी स्वाभाविक है जिनसे लोकहित का मार्ग प्रशस्त होता है। भूख प्यास रोग आदि से मरते हुए या संकटग्रस्त प्राणियों को अन्न, जल व औषधि आदि देकर बचाना, भोजन कराना, तालाब आदि खुदवाना, अस्पताल खुलवाना आदि कार्य उसकी उसी प्रवृत्ति के अंग माने जाते हैं। इन लोक कल्याणकारी दानों के सम्बन्ध में शास्त्रीय वचन इस प्रकार हैं –

अग्निपुराण के ६४/४२/४३ में लिखित है–

अश्वमेध सहस्त्राणां सहस्त्रं यः समाचरेत्।
एकाहं स्थापयेतोयं तत् पुण्यमयुतायुतम्॥
विमाने मोदते स्वर्गे नरकं न स गच्छति॥

लाखों अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल होता है उससे भी असंख्य गुना अधिक फल एक बार की जलाशय प्रतिष्ठा से होता है। वह जलदान करने वाला व्यक्ति स्वर्ग में विमान पर आरूढ़ होकर विहार करता है, वह नरक में कभी नहीं जाता है।

महाभारत के १३/६५/३-४ में उक्त है –

पानीयं परमं दानं दानानां मनुरब्रवीत्।
तस्मात् कूपांश्च वापीश्च तडागानि च खानयेत्।
अर्द्धं पापस्य हरति पुरुषस्येह कर्मणः।
कूपः प्रवृत्त पानीयः सुप्रवृत्तश्च नित्यशः॥

मनु महाराज ने कहा है कि जलदान सब दानों से बढ़कर है, इसलिए कुंए पोखरे खोदवाने चाहिये। जिसके खोदवाये हुए कुएं में अच्छी तरह पानी निकलकर यहाँ पर सब लोकों के उपयोग में आता है वह कार्य उस मनुष्य के पापकर्म का आधा भाग हर लेता है।

अग्निपुराण ६४/४४ में उक्त है -

गवादि पिबते यस्मात्तस्मात् कर्त्तु र्न पातकम्।
तोयदानात् सर्वदानफलं प्राप्य दिवं व्रजेत्॥

जलाशय के निर्माण करने से गौ आदि प्राणी जल पीकर तृप्त होते हैं इसलिए जलाशय निर्माता को कोई पाप नहीं लगता अर्थात् तालाब आदि बनाने में जो कुछ जीव हिंसा हो जाती है, उसके पाप से मुक्त होता है। वह जलदान से सब दानों के फल को प्राप्त करता है, तथा स्वर्ग का अधिकारी होता है।

महाभारत के १३/६५/५-६ में उक्त है -

सर्वं तारयते वंशं यस्य खाते जलाशये।
गावः पिबन्ति विप्राश्च साधवश्च मृगः सदा।
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम्।
स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुते॥

जिसके खोदवाये हुए जलाशय से गौ, ब्राह्मण तथा श्रेष्ठ पुरुष सदा जल पीते हैं, वह जलाशय उस मनुष्य के समूचे कुल का उद्धार कर देता है। जिसके बनवाये हुए तालाब में गरमी के दिनों में भी पानी रहता है, कभी नहीं घटता है, वह पुरुष कभी अत्यन्त विषम संकट में नहीं पड़ता।

विष्णुधर्मपुराण २/१२२/२५ में लिखित है -

तडागारामकर्त्तारस्तथाऽन्येवृक्षरोपकाः।
कूपानां ये च कर्त्तारो दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

जो तालाब, बगीचे व कुंआ आदि का निर्माण करते कराते हैं और वृक्ष लगाते हैं वे दुर्गम संकटों को पार कर लेते हैं।

महाभारत के १३/५८/२१ में लिखित है-

सर्वदानैर्गुरुतरं सर्वदानैर्विशिष्यते।
पानीयं नरशार्दूल तस्माद् दातव्यमेव हि॥

जलदान सब दानों से महान् एवं समस्त दानों से बढ़कर है, अतः उसका दान अवश्य करना चाहिए।

ऋग्वेद के ८/८१/६ में अहिंसात्मक दान धर्म का प्रेरक वचन इस प्रकार है -

आतो भर दक्षिणेनाभिसव्येन प्रमृशा।

दाएं और बाएं - दोनों हाथों से दान करो।

महाभारत में १३/१४१/७७ में उक्त है -

दातव्यमसकृच्छक्त्या॥

अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को निरन्तर अपनी शक्ति के अनुसार दान करते रहना चाहिए।

अथर्ववेद में लिखा है ३/२४/५ -

शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह सगतिं समावह॥

हे मनुष्य! तू सौ हाथों से कमा और हजार हाथों से उसे समाज में

फैला दे, अर्थात् दान कर दे। इस प्रकार तू अपने किए हुए तथा किये जाने वाले कार्य को अभिवृद्धि कर।

ऋग्वेद के ५/३७/१ में उक्त है -

विदद्वस उभय हस्त्या भर।

हे धनिक! दोनों हाथों से दान करो।

तैत्तिरीय उपनिषद् में उक्त है -

श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया देयम् श्रिया देयम्।
ह्रिया देयम् भिया देयम् संविदा देयम्॥

श्रद्धा से दान देना, अश्रद्धा से भी देना, अपना बढ़ती हुई धन-सम्पत्ति में से देना, श्रीवृद्धि न हो तो भी लोकलाज से देना, भय, समाज तथा अपयश के डर से देना, और संविद, प्रेम अथवा विवेक बुद्धि से देना, अर्थात् श्रद्धा अश्रद्धा किसी कारण से हो दान एक धर्म कार्य है।

मत्स्य पुराण के ४०/३ में उक्त है-

धर्मगतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात् सदैवातिथीन् भोजयेच्च।
अभयदानञ्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत् पुराणी॥

धर्म सम्मत रीति से धनार्जन कर, यज्ञ करे, सदैव अतिथियों को दान दे और उन्हें भोजन करावे। दूसरों की बिना दी हुई वस्तु न ले - यह प्राचीन गृहस्थोपनिषत् है अर्थात् गृहस्थ के लिए रहस्यपूर्ण उपदेश सार है।

शौच अर्थात् शुद्धि अहिंसा से ही सम्यक् होती है।

विष्णुधर्मपुराण में इस विषय में लिखित है ३/२४९/६

योऽर्थेशुचिः स हि शुचिः न मृद्वारि शुचिः शुचिः।
ततश्चाप्यधिकं शौचम् अहिंसा परिकीर्त्तितः॥

मिट्टी व जल से शुद्धि प्राप्त करने वाला शुद्ध नहीं है, किन्तु पैसों के मामले में जो शुद्ध है वही शुद्ध है। उससे भी अधिक शुद्धता अहिंसा से होती है।

अहिंसा से ही अस्तेय चोरी न करने की पूर्णता होती है।

कूर्मपुराण में लिखित है-२/२९/३०-३२

स्तेयादभ्यधिकः कश्चित् नास्त्यधर्म इति स्मृतिः।
हिंसा चैषा परा दिष्टा सा चात्मज्ञाननाशिका॥
यदेतत् द्रविणं नाम प्राणा ह्येते वहिस्वराः॥
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम्॥

चोरी से बढ़कर कोई अधर्म नहीं है-यह स्मृति वचन है। चोरी सबसे बड़ी हिंसा है, जो आत्म-ज्ञान को नष्ट करती है। धन-सम्पत्ति वास्तव में लोकों के बाह्य प्राण हैं। अतः जो जिसकी धन-सम्पत्ति लूटता व चोरी करता है वह उसके प्राणों का हरण, प्राणबध ही करता है, अर्थात् चोरी करना हिंसा कार्य ही है।

विष्णुधर्म पुराण के ३/२५२/११ में लिखित है-

स्त्री हिंसा धन हिंसा च प्राणिहिंसा च दारुणा।
हिंसा च त्रिविधा प्रोक्ता वर्जिता पण्डितैर्नरैः॥

पण्डित लोकों ने तीन प्रकार की हिंसाओं को वर्जनीय माना है। वे हैं-

१. स्त्रीहिंसा, २. धनहिंसा, चोरी, डकैती, कब्जा आदि कर परधन हड़पना। ३. दारुण प्राणिहिंसा - निर्दयता से किसी को मारना।

विष्णु धर्मपुराण के ३/२५२/१२ में उक्त है -

अहिंसकस्तु यत्नेन वर्जयेत् परस्त्रियम्।
विजनेऽपि तथा न्यस्तं परद्रव्यं प्रयत्नातः॥

अहिंसक को चाहिए कि वह प्रयत्नपूर्वक परस्त्री का त्याग करे। साथ ही परद्रव्य को भी उसके स्वामी से आज्ञा लिए बिना ग्रहण न करे, भले ही वह निर्जन स्थान पर पड़ा हुआ है।

इन्द्रिय संयम दम, जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्य आदि अहिंसा से ही सम्पन्न होते हैं। जब तक अहिंसा-अर्थात् दया, क्षमा आदि अहिंसक आचरण जीवन में नहीं आते, तब तक इन्द्रिय निग्रह, इन्द्रिय संयम, ब्रह्मचर्य, दम एवं जितेन्द्रियता आदि धर्मों की पूर्णता सम्भव नहीं है।

इस विषय में महाभारत के ५/४३/२३-२५ में उक्त है-

दमो ह्यष्टादशगुण प्रतिकूलं कृताकृते।
अनृतं चाभ्यसूया च कामार्तो च तथा स्पृहा॥
क्रोध शोकस्तथा तृष्णा लोभः पैशुन्यमेव च।
मत्सरश्च विहिंसा च परित्यागस्तथाऽरतिः॥
अपस्मारश्चातिवादस्तथा सम्भावनाऽऽत्मनि
एतैर्विमुक्तो दोषैर्यः स दान्तः सद्भिरुच्यते॥

दम, इन्द्रिय निग्रह के लिए अठारह गुण अपेक्षित हैं। अठारह दोषों के त्याग से ही अठारह गुण उत्पन्न हो सकते हैं। १. हिंसा सम्बन्धि दुष्प्रवृत्ति, २. अकर्त्तव्य के विषय में विपरीत धारणा, ३. असत्य भाषण, ४. गुणों में दोष दृष्टि, ५. स्त्री विषयक कामना, ६. सदा धनोपार्ज्जन में लगे रहना, ७. भोगेच्छा, ८. क्रोध, ९. शोक, १०. तृष्णा, ११. लोभ, १२. चुगली करने की आदत, १३. डाह, १४. सन्ताप, १५. शास्त्र में अरति, १६. कर्तव्यों की विस्मृति, १७. अधिक बकवाद और १८ अपने को बड़ा समझना। इन दोषों से जो मुक्त है, उसी को सत्पुरुष दान्त, जितेन्द्रिय कहते हैं।

महाभारत ५/६३/१४-१५ में जितेन्द्रिय का लक्षण इस प्रकार वर्णित है-

क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम्।
इन्द्रियविजयो धैर्यं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥

अकार्पण्यमसरम्भः सन्तोषः श्रद्धधानता।
एतानि यस्य राजेन्द्र स दान्तः पुरुषः स्मृतः॥

जिस पुरुष में क्षमा, धैर्य, समदर्शिता, सत्य, सरलता, इन्द्रियसंयम, धीरता, मृदुता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, अक्रोध, सन्तोष और श्रद्धा-ये गुण विद्यमान हैं वही पुरुष दान्त, इन्द्रियविजयी माना गया है।

इन्द्रियविजय का विरोधी दोष है - मद।

महाभारत के ५/४५/९-११ में उक्त है -

मदोऽष्टादश दोषः स स्यात् पुरा योऽप्रकीर्त्तितः।
लोकद्वेष्यं प्रातिकूल्यमभ्यसूया मृषा वचः॥
कामक्रोधो पारतन्त्र्यं परीवादोऽथ पैशुनम्।
अर्थहानिनिर्विवादश्च मात्सर्य्यं प्राणिपीड़नम्॥
ईर्ष्या मोदोऽतिवादश्च संज्ञा नाशोऽभ्यसूयिता।
तस्मात् प्राज्ञो न माद्येत सदा ह्येतत् विगर्हितम्॥

जितेन्द्रिय होने के लिए मद सम्बन्धित हिंसक कार्यों से रहित होना अनिवार्य है। मद के अठारह दोष है। १. लोकों के साथ द्वेष रखना, २. शास्त्र के प्रतिकूल आचरण करना, ३. गुणियों पर दोषारोपण, ४. असत्य भाषण, ५. काम, ६. क्रोध, ७. पराधीनता, ८. दूसरों के दोष बताना, ९. चुगली करना, १०. धन का दुरुपयोग से नाश, ११. कलह, १२. डाह, १३. प्राणियों को कष्ट देना, १४. ईर्ष्या, १५. हर्ष, १६. बहुत बकवाद, १७. विवेक शून्यता, १८. गुणों में दोष देखना। इसलिए मद का परित्याग करना चाहिए।

महाभारत के १२/२२०/१५ में लिखित है-

अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः।
नमस्यः सर्वभूतानां दान्तो भवति बुद्धिमान्॥

जो समस्त प्राणियों से निर्भय है तथा जिससे सम्पूर्ण प्राणी निर्भय हो

गये हैं, वह संयमशील जितेन्द्रिय एवं बुद्धिमान् पुरुष सब जीवों के लिए वन्दनीय है।

अहिंसा से ही तप कार्य निष्पन्न होता है। शास्त्र में तप को भी एक विशिष्ट धर्म माना गया है। तप के तीन भेद हैं-शारीरिक, मानसिक, वाचिक ये तीनों ही तप एक प्रकार से अहिंसक आचरण की साधना है। इसका शास्त्रीय वचन इस प्रकार है -

महाभारत के ६/४१/१४ में उक्त है -

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु व ज्ञानी जनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा-ये सब शरीर सम्बन्धी तप के अन्तर्गत हैं।

महाभारत के १२/७९/१७-१९ में उक्त है -

तपो यज्ञादपि श्रेष्ठमित्येषा परमाश्रुतिः।
अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो घृणा।
एतत् तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम्॥

यज्ञ की अपेक्षा तप श्रेष्ठ है, यह वेद का परम उत्तम वचन है। किसी भी प्राणी की हिंसा न करना, सत्य बोलना, क्रूरता को त्याग देना, मन और इन्द्रियों को संयम में रखना तथा सबके प्रति दया भाव बनाये रखना-इन्हीं को धीर पुरुषों ने तप माना है। केवल शरीर को सुखाना तप नहीं है।

महाभारत के १२/१९२/१७-१८ में उक्त है -

सोपधं निकृतिः स्तेयं परीवादी ह्यसूचिता।
परोपघाती हिंसा च पैशुन्यमनृतं तथा॥
एतानासेवते यस्तु तपस्तस्य प्रहीयते।
यस्त्वेतान् नाचरेद् विद्वांस्तपस्तस्य प्रवर्धते॥

कपट, शठता, चोरी, परनिन्दा, दूसरों के दोष देखना, दूसरों को हानि पहुँचाना, प्राणी हिंसा, चुगली खाना और झूठ बोलना - इन दुर्गुणों का जो सेवन करता है उसकी तपस्या क्षीण होती है। किन्तु जो विद्वान् इन दोषों को कभी आचरण में नहीं लाता उसकी तपस्या निरन्तर बढ़ती रहती है।

भगवद् गीता में उक्त है १७/१६

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

मन की प्रसन्नता, शान्तभाव, मौन रहना, मन का निग्रह और अन्तःकरण के भावों की भली-भाँति पवित्रता-ये सब मानसिक तप कहे जाते हैं।

वर्णाश्रम धर्म एवं आध्यात्मिक धर्म में अहिंसा का पूर्ण विधान है। शास्त्रों में वर्ण व आश्रम से सम्बन्धित सामान्य व विशेष धर्मों का निरूपण किया गया है, उनमें अहिंसा या उसके अभिन्न अंगों-दया, करुणा, प्राणिरक्षा को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। और क्रूरता, हिंसा के कार्य का निषेध भी किया गया है।

गृहस्थ जीवन हो या आध्यात्मिक जीवन हो, दोनों की चर्य्याओं में व्यक्ति की भूमिका के अनुरूप, अहिंसा का होना अपेक्षित माना गया है, इसलिए महाभारत १२/१९१/१५ तथा नारदीय पुराण १/४३/११६ में अहिंसा को सभी आश्रमों के लिए आचरणीय बताते हुए कहा गया है- अहिंसा सत्यमक्रोधः सर्वाश्रमगतं तपः। इसका शास्त्रीय प्रमाण इस प्रकार है -

विष्णुपुराण के ३/८/३६-३७ में उक्त है -

दया समस्तभूतेषु तितिक्षानातिमानिता।
सत्यं शौचमनायासो मंगलं प्रियवादिता॥
मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर।
अनसूया च सामान्य वर्णानां कथिता गुणाः॥

समस्त प्राणियों पर दया, सहनशीलता, अभिमानहीनता, सत्य, शौच, अधिक परिश्रम करना, मंगल आचरण, प्रियवादिता, मैत्री, निष्कामता, अकृपणता और किसी के दोष न देखना- ये समस्त वर्णों के सामान्य गुण हैं।

श्रीमद्‌भागवत पुराण के ११/१७/२१ में उक्त है-

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय; काम, क्रोध व लोभ से रहित होना और प्राणियों की प्रिय व परोपकारिणी चेष्टा में तत्पर रहना- ये सभी वर्णों के साध ारण धर्म हैं।

विष्णु संहिता के वर्णाश्रम वृत्ति धर्म वर्णन प्रसङ्ग में वर्णित है -

क्षमा सतां दमः शौचं दानमिन्द्रिय संयमः।
अहिंसा गुरुशुश्रूषा तीर्थानुसरणं दया॥
आर्जवत्वमलोभश्च देव-ब्राह्मण-पूजनम्।
अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य उच्यते॥

सभी वर्णों के साधारण धर्म हैं -क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, गुरु की सेवा, तीर्थाटन, दया, सरलता, अलोभ, देवता और ब्राह्मणों की पूजा, और अनभ्यसूया निन्दा न करना आदि।

विष्णुपुराण के ३/८/२४ में ब्राह्मण धर्म में अहिंसा का विधान है-

सर्वभूतहितं कुर्य्यान्नाहितं कस्यचित् द्विजः।
मैत्री समस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम्॥

ब्राह्मण को कभी किसी का अहित नहीं करना चाहिए और सर्वदा समस्त प्राणियों के हित में तत्पर रहना चाहिये। सम्पूर्ण प्राणियों में मैत्री रखना ही ब्राह्मण का परम धर्म है।

महाभारत के १२/२६९/३३ में उक्त है-

अभयं सर्वभूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः।
सर्वभूतात्मभूते यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

जो सम्पूर्ण भूतों से निर्भय है, जिसमें समस्त प्राणी भय नहीं मानते हैं तथा जो सब भूतों का आत्मा है, उसी को देवता ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञानी मानते हैं।

महाभारत के १३/१४१/४१-४२ में उक्त है-

यज्ञश्च परमो धर्मस्तथाऽहिंसा च देहिषु।
अपूर्व योजनं धर्मे विघसाशित्वमेव च॥
भुक्ते परिजने पश्चात् भोजनं धर्म उच्यते।
ब्राह्मणस्य गृहस्थस्य श्रोत्रियस्य विशेषतः॥

गृहस्थ धर्म का निरुपण इस प्रकार है-घर में पहले भोजन न करना, तथा विघसाशी होना, कुटुम्ब के लोगों के भोजन करने के बाद ही अवशिष्ट अन्न का भोजन करना, यह ही उसका धर्म है। जब कुटुम्बीजन भोजन कर लें उसके पश्चात् स्वयं भोजन करना, यह गृहस्थ ब्राह्मण का विशेषतः श्रोत्रिय वेदाभ्यासी का मुख्य धर्म बताया गया है।

क्षत्रिय का भी अहिंसा धर्म है -

मनुस्मृति के ७/५० में लिखित है -

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत् कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजं गणे॥

कामजन्य व्यसन, समुदाय में मद्यपान, जुआ, स्त्रियाँ और शिकार (आखेट) इन चारों को क्रमशः अधिकाधिक कष्टदायक समझे।

मनुस्मृति के ७/५१ में उक्त है-

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात् कष्टमेतत्त्रिकं सदा॥

क्रोधजन्य व्यसन-समुदाय में दण्ड प्रयोग, कटु वचन और अर्थ दूषण, अन्यान्य से दूसरे की सम्पत्ति हड़प लेना - इन तीनों को क्षत्रिय राजा सर्वदा अतिकष्टदायक माने।

शूद्र वर्ण के लिए भी अहिंसा धर्म का वर्णन महाभारत के १३/१४१ में इस प्रकार है -

अहिंसकः शुभाचारी दैवतद्विजवन्दकः।
शूद्रो धर्म फलैरिष्टैः स्वधर्मेणापि युज्यते॥

शूद्रों के अहिंसक, सदाचारी और देवों व ब्राह्मणों का पूजक होना चाहिए। ऐसा शूद्र धर्म पालन कर अभीष्ट धर्मफलों का भागी होता है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में अहिंसा धर्म का विधान इस प्रकार है, गरुड़ पुराण में उक्त है- अप्रियं न वदेज्जातु ब्रह्मसूत्री विनीतवान्।

ब्रह्मसूत्रधारी ब्रह्मचारी विनय सम्पन्न रहे और कभी अप्रिय भाषण न करे।

गृहस्थ आश्रम में अहिंसक आचरण का वर्णन दक्षस्मृति के २/४८-४९ में इस प्रकार है-

विभागशीलो यो नित्यं क्षमायुक्तो दयापरः।
देवतातिथि भक्तश्च गृहस्थः स तु धार्मिकः॥
दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा योगः कृतज्ञाता।
एते तस्य गुणाः सन्ति सं गृही मुख्य उच्यते॥

जो नित्य बाँटकर खाने के स्वभाव वाला, क्षमा से युक्त, दया परायण तथा देवता- अतिथियों का भक्त गृहस्थ होता है वही गृही वस्तुतः धार्मिक होता है। जिस गृहस्थ में दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, प्रज्ञा, योग, कृतज्ञता-ये

गुण विद्यमान होते हैं, वही गृहस्थ सबमें प्रमुख व परम प्रशस्त है।

महाभारत के १३/१४१/२५ में लिखित है -

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः॥

किसी भी जीव की हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियों पर दया करना, मन और इन्द्रियों पर काबू रखना तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान देना- यह सब गृहस्थ आश्रम के उत्तम धर्म हैं।

नारदीय पुराण के १/४/७३ में उक्त है -

कर्मणा मनसा वाचा बाधते यः सदा परान्।
नित्यं कामादिभिर्युक्तो मूढ़धीः प्रोच्यते तु सः॥

जो व्यक्ति मन, वचन व कर्म से दूसरों को पीड़ा देता है और सदा काम भोगों में आसक्त रहता है वह मूढबुद्धि कहा जाता है।

महाभारत में उक्त है - ३/२०९/४४ -

सतां धर्मेण वर्त्तेत क्रियाशिष्टवदाचरेत्।
असंक्लेशेन लोकस्य वृत्तिं लिप्स्येत वै द्विज॥

मनुष्य को चाहिए कि वह सत्पुरुषों के धर्म का पालन करे, शिष्ट पुरुषों के समान आचरण करे और जगत् में किसी भी प्राणी को कष्ट दिये बिना जिससे जीवन निर्वाह हो सके ऐसी आजीविका प्राप्त करने की इच्छा करे।

कूर्म पुराण के २/१६/१ में लिखित है -

न हिंस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् क्वचित्।
ना हितं नाप्रियं ब्रूयान्न स्तेनः स्यात् कथञ्चन॥

गृहस्थ को चाहिये कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे और न

ही असत्य बोले, वह न तो अहितकारी व अप्रिय भाषण करे और न ही कभी चोरी करे।

महाभारत के १२/३५९/७ में उक्त है-

गृहस्थ धर्मो नागेन्द्र सर्वभूत हितेरताः।

समस्त प्राणियों के हित की रक्षा करना गृहस्थ का धर्म है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में उक्त है १/६/१५६ -

कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद् धर्मं समाचरेत्।
अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्नतु॥

गृहस्थ इस प्रकार धर्म का आचरण न करे जो स्वर्ण को न देने वाला तथा लोक में विद्वेष कराने वाला हो।

कूर्म पुराण के २/१६/३३ में उक्त है -

न कुर्याद्दुःखवैराणि विवादं चैव पैशुनम्।

गृहस्थ दुःखद शत्रुता, विवाद व पिशुनता चुगलखोरी का व्यवहार किसी से न करे।

विवाह में भी हिंसात्मक कार्य का निषेध है।

मनुस्मृति के ३/३३ में उक्त है -

हत्वा छित्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसी विधिरुच्यते॥

कन्या के पक्ष वालों को मारकर या उनका अंग छेदन कर घर द्वारादि को तोड़कर मैं बलात्कार से अपहृत हो रही हूँ - इस प्रकार चिल्लाती तथा रोती हुई कन्या को बलात्कार से हरण करके लाना 'राक्षस' विवाह कहा गया है, अधम कोटि का होने के कारण इस प्रकार का विवाह त्याज्य है।

हिंसा दोष निवारक 'पंचसूना' पाँच प्रकार का है। मनु स्मृति ३/६८-७२ में इस प्रकार वर्णित है -

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्।
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पंच क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो वलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।
पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते॥
देवताऽतिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः।
निर्वपति पंचानामुच्छ्वसन्न स जीवति॥

गृहस्थ के लिए चुल्ली, चक्की (जाता), झाडू, ओखली, मुसल और जल का घट- ये पाँच पाप, हिंसा के स्थान हैं। इन वस्तुओं का उपयोग करता हुआ गृहस्थ अनजाने में होने वाली जीव-हिंसा के पाप से बंधता है। उन सबों की निवृत्ति के लिए महर्षियों ने पंचमहायज्ञ करने का विधान गृहस्थाश्रमियों के लिए कहा है। वेद का अध्ययन और अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण करना पितृयज्ञ है, हवन करना देवयज्ञ है। बलिवैश्वदेव करना भूतयज्ञ है तथा अतिथियों का भोजन आदि से सत्कार करना नृयज्ञ है। यथाशक्ति इन पंचमहायज्ञों को नहीं छोड़ने वाला गृहस्थाश्रम में रहता हुआ भी द्विज पंचसूना पाँच हिंसा के दोषों से युक्त नहीं होता है। जो गृहस्थाश्रमी देवताओं तथा भूतों, अतिथियों, माता-पिता आदि वृद्धजनों तथा सेवकों, पितरों आदि और स्वयं को अन्नादि से सन्तुष्ट नहीं करता है, वह श्वांस लेता हुआ भी नहीं जीता है, मरे हुए के समान है।

तत्पर्य यह है - गृहकार्य रसोई आदि की व्यवस्था में अनिवार्य रूप से हिंसा हो जाती है। इन हिंसायुक्त स्थलों को सूना कहते हैं। प्रथम सूना अचानक

जल में प्रवेश, जल में डुबकी लेने, वस्त्र से बिना छाने जल ग्रहण करने आदि की क्रियाओं के दौरान उत्पन्न होती है। दूसरी सूना वह है जो अन्धकार में इधर-उधर चलने, शीघ्रता से हिलने डुलने, अनजाने में कीड़ों, मकोड़ों पर चढ़ जाने आदि से होती है। तीसरी सूना जो पीटने या काटने, कुल्हाड़ी से वृक्ष, काष्ठ आदि को काटने पीटने, चूर्ण करने लकड़ी आदि चीरने से होती है। चौथी सूना वह है जो अनाज कूटने, रगड़ने या पीसने से होती है और पांचवी सूना वह है जो लकड़ी आदि के घर्षण से जल आदि के गर्म करने, भूनने, छीलने या पकाने से होती है। गृहस्थ लोकों को इन पाँच प्रकार की हिंसा के पापों से छुटकारा दिलाने के लिए पाँच यज्ञों का विधान किया गया है। प्रथम यज्ञ है ब्रह्मयज्ञ अर्थात् वेद, सत्शास्त्र का अध्ययन, अध्यापन, स्वाध्याय (२) पितृयज्ञ अर्थात् पितरों के प्रति श्रद्धार्पण (३) देवयज्ञ अर्थात् अग्नि में आहूति डालना (४) भूतयज्ञ अर्थात् जीवों को अन्न दान (५) नृयज्ञ अर्थात् मनुष्ययज्ञ-अतिथि को अन्न-भोजनादि का दान। इनमें अन्तिम दो भूतयज्ञ एवं मनुष्य यज्ञ - यज्ञों में व्यक्ति ब्रह्माण्ड में रह रहे प्राणियों व मनुष्यों के प्रति अपने धार्मिक उत्तरदायित्व-कर्त्तव्यों को त्याग की भावना के माध्यम से क्रियात्मक रूप देता है और इस प्रकार अनजाने में हुई जीव हिंसा के पाप से मुक्ति पाने का प्रयास करता है।

दया भाव की अभिव्यक्ति भूतयज्ञ में होती है। भूतयज्ञ के माध्यम से तुच्छ उपेक्षित जीव जन्तुओं के प्रति तथा परिवार व समाज के दीन व रोगी व्यक्तियों के प्रति अपनी दया भावना को अभिव्यक्त करता है।

पद्मपुराण के १/१५/३०२ में लिखित है-

नात्मार्थे पाचयेदन्नम्।

केवल अपने ही भोजन के लिए रसोई न बनावे किन्तु अन्य प्राणियों की भूख मिटाने के उद्देश्य से बनावें।

विष्णु पुराण में अन्नदान का प्रकरण इस प्रकार है-

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धा स्म यक्षोरग दैत्य संघाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवस्समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मयात्तदत्तम्॥
पिपीलिका कीटपतङ्गश्च बुभुक्षिताः कर्मणि बन्धबद्धाः
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु॥

प्राणियों को अन्न दान करते समय इस प्रकार मनोभाव प्रकट करना चाहिये। देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, दैत्य, प्रेत, पिशाच, वृक्ष तथा अन्य भी चींटी आदि कीट, पतंग जो अपनी कर्मबन्धन से बँधे हुए क्षुधातुर होकर मेरे दिये हुए अन्न की इच्छा करते हैं उन सबके लिए मैं यह अन्न दान करता हूँ। वे इससे परितृप्त और आनन्दित हों।

वानप्रस्थ आश्रम में अहिंसा आचरण होता है।

मनुस्मृति ६/८ में उक्त है -

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यामनादाता सर्वभूतानुकम्पकः॥

वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति सर्वदा वेदाभ्यास में लगा रहे। ठण्ड-गर्म, सुख-दुःख, मान-अपमान आदि सभी द्वन्दों को सहन करें; सबसे मित्र भाव रखे, मन को वश में रखे, दानशील बने, दान न ले और सब जीवों पर दया करे।

महाभारत के १३ में संन्यास आश्रम में अहिंसा आचरण का वर्णन इस प्रकार है -

अहिंसा ब्रह्मचर्यं च सत्यमार्जवमेव च।
अक्रोधश्चानुसूया च दमो नित्यमपैशुनम्॥
अष्टस्वेतेषु युक्तः स्याद् व्रतेषु नियतेन्द्रियः।
आशीर्युक्तानि सर्वाणि हिंसा युक्तानि यानि च॥
लोकसंग्रह धर्मं च नैव कुर्यान्नकारयेत्।

परं नोद्वेजयेत् कंचिन्न च कस्यचिदुद्विजेत्।
विश्वास्यः सर्वभूतानामग्रो मोक्षविदुच्यते॥

संन्यासी को चाहिए कि वह अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, सरलता, क्रोध का अभाव, दोष दृष्टि की त्याग, इन्द्रिय संयम और चुगली न खाना; इन आठ व्रतों का सदा सावधानी के साथ पालन करे। इन्द्रियों को वश में रखे। जितने भी कामना और हिंसा से युक्त कर्म है, उन सबका लौकिक कर्मों का न स्वयं अनुष्ठान करे और न दूसरों से करावे। किसी दूसरे प्राणी को उद्वेग में न डाले और स्वयं भी किसी से उद्विग्न न हो, वो सब प्राणियों का विश्वासपात्र बन जाता है। वह सबसे श्रेष्ठ और मोक्ष-धर्म का ज्ञाता कहलाता है।

श्रीमद्भागवत के ११/१९/४२ में उक्त है

'भिक्षो धर्मः शमोऽहिंसा'-

शान्ति तथा अहिंसा-ये संन्यासी के प्रधान धर्म हैं।

कूर्म पुराण के २/२८/१८,१९,२२ में उक्त है-

रागद्वेषवियुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
प्राणिहिंसा निवृत्तश्च मौनी स्यात् सर्व निःस्पृहः॥
दम्भाहंकार निर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः।
आत्मज्ञानगुणोपेतः यतिर्मोक्षमवाप्नुयात्॥

संन्यासी को चाहिए कि वह राग-द्वेष से हीन हो, पत्थर व सोने में समभाव रखें। प्राणियों की हिंसा से सर्वथा दूर रहे। मौन रखे तथा सभी पदार्थों से निःस्पृह (अनासक्त) रहे। दम्भ अहंकार से भी दूर रहे। परनिन्दा चुगल खोरी न करे। और आत्मज्ञान रूपी गुण से युक्त हो। ऐसा यति मोक्ष की प्राप्त करता है।

पद्मपुराण के ३/५९/१९ में उक्त है -

प्राणिहिंसा निवृत्तिश्च मौनी स्यात् सर्वनिःस्पृहः॥

भिक्षु संन्यासी को चाहिए कि वह प्राणियों की हिंसा से सर्वथा निवृत्त रहे। मौन रखे और सभी में निःस्पृह रहे।

याज्ञवल्क्य स्मृति में ३/४/६५ में उक्त है -

नाश्रमः कारणं धर्मे क्रियमाणो भवेद्धि सः।
अतो यदात्मनोऽपथ्यं परेषां न तदाचरेत्॥

आत्मोपासन रूप धर्म के आचण में आश्रम का प्रतीक दण्ड कमण्डलु आदि कारण नहीं है, अपितु वह धर्म करने, आचरण से होता है, इसलिए जो अपने लिए अपथ्य, अहितकारी है; उसे दूसरे के लिए नहीं करना चाहिए।

मनुष्यत्व, देवत्व, बन्ध-मुक्तत्व-इन क्रमिक सोपानों पर अग्रसर होने के लिए अनेक साधन हैं। गीता का कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग; योगसूत्र की योग साधना, अनासक्ति का ज्ञानमार्ग हो या कठोर तपश्चर्या सभी में अहिंसा को प्रतिष्ठित किए बिना जीवन में लक्ष्य प्राप्ति नहीं हो सकती। इसका शास्त्रीय विवरण इस प्रकार है -

विष्णुधर्मपुराण ३/२३३/२०३ में उक्त है-

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा च दमःस्पृहा।
ध्यानं प्रसादो माधुर्यं चार्जवं च यमा दश॥

१. आनृशंस्य (दया, कोमलता), २. क्षमा, ३. सत्य, ४. अहिंसा, ५. दम (इन्द्रिय-निग्रह), ६. मोक्ष की स्पृदा, ७. ध्यान, ८. प्रसाद, प्रसन्नता, ९. मधुरता तथा १०. ऋजुता, सरलता-ये दस 'यम' है।

कूर्मपुराण २/११/१३ में कथित है-

अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहैः।
यमाः संक्षेपतः प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम्॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच

यम हैं। जो योग साधना के प्राथमिक आधार हैं, और मुमुक्षु के लिए चित्त शुद्धि के उपाय साधन हैं।

योग सूत्र २/३० का व्यास भाष्य इस प्रकार है -

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः। उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धि- परतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते, तदवदातरूपकरणाय उपादीयन्ते। तथा चोक्तं स खलु अयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसा-निदानेभ्यो निवर्त्तमानः तामेव अवदातरूपामहिंसा करोति।

पाँच यमों में पहला यम है- अहिंसा, जिसका अर्थ है समस्त प्राणियों के प्रति द्रोह दुर्भावना का त्याग। उत्तरवर्त्ती यम नियमों सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह - ये चारों यम और शौच, सन्तोष, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान ये पाँचों नियम का मूल अहिंसा ही है। कारण अहिंसा की सिद्धि होने पर ही सत्यादि की सिद्धि सफलता सम्भव होती है। इसलिए अहिंसा के स्पष्ट प्रतिपादन के लिए ही उसका प्रतिपादन किया जाता है। यह ब्राह्मण जैसे-जैसे बहुत से व्रतों को धारण करता जाता है, वैसे-वैसे प्रमाद कृत हिंसा हेतुओं से निवृत्त होता हुआ, उसी अहिंसा को और भी अधिकाधिक निर्मल बनाता जाता है।

अथर्ववेद ४/३४/३ में उक्त है -

''आस्ते यम उपयाति देवान्''

जो अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप यमों का पालन करता है, वह देवत्व को प्राप्त करता है।

अहिंसा ज्ञानयोग एवं भक्तियोग उभय योगों में समान रूप से पालनीय है।

नारदीय पुराण के १/३३/३५ में उक्त है-

अहिंसा सत्यमक्रोधो ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः।
अनीर्ष्या च दया चैव योगयोरुभयोः समाः॥

अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना अर्थात् क्षमा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ईर्ष्या न करना, दया - ये ज्ञानयोग एवं क्रियायोग इन दोनों योग-साधनाओं में समान रूप से पालनीय हैं। ध्यान योग में भी अहिंसा पालनीय है। अग्निपुराण के ३७४/१३-१४ में उक्त है -

ज्ञानयज्ञः परः शुद्धः सर्वदोषविवर्जितः।
तेनेष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति बाह्यशुद्धैश्च नाध्वरैः॥

ध्यानयज्ञ अत्यन्त शुद्ध और सभी दोषों से रहित है। इसलिए ध्यान यज्ञ से ही मोक्ष प्राप्त होता है केवल बाह्य शुद्धि यज्ञ से नहीं।

अग्निपुराण के ३७४/१४-१५ में उक्त है -

हिंसा दोषविमुक्तित्वाद्विशुद्धिश्चित्त साधनः।
ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्ग फलप्रदः॥

हिंसा और दोष से विमुक्त होने के बाद जो चित्त की विशुद्धि होती है, उसके बाद ही ध्यान यज्ञ पूर्ण होता है जो मोक्ष फल को देने वाला है।

महाभारत के १२/२७०/३९-४० में कथित है -

आनृशंस्यं क्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम्।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा क्षमस्तथा॥
पन्थानो ब्रह्मणस्त्वेते एतैः प्राप्नोति यत् परम्।
तद् विद्वाननुबुध्येत मनसा कर्म निश्चयम्॥

समस्त प्राणियों के प्रति दया, क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य, सरलता, अद्रोह, निरभिमानिता, लज्जा, तितिक्षा और शम - ये परब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग हैं। इनसे व्यक्ति परब्रह्म को पा लेता है, इस प्रकार विद्वान् को मन के द्वारा कर्म के वास्तविक परिणाम का निश्चय करना चाहिए।

महाभारत के १२/२१/५ में उक्त है -

यदाऽसौ सर्वभूतानां न द्रुह्यति न काङ्क्षति।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥

जब व्यक्ति मन, वाणी और क्रिया द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों में किसी के साथ न तो द्रोह करता है और न किसी की अभिलाषा ही करता है। तब वह परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

महाभारत १३/११३/१ में युधिष्ठिर महाराज ने बृहस्पति को पूछा -

अहिंसा वैदिकं कर्म ध्यानमिन्द्रियसंयमः।
तपोऽथ गुरुशुश्रूषा किं श्रेयः पुरुष प्रति॥

अहिंसा, वेदोक्त कर्म, ध्यान, इन्द्रियसंयम, तपस्या और गुरूशुश्रूषा इनमें से कौन सा कर्म मनुष्य का श्रेय कर सकता है?

महाभारत के १३/१४४/८-९ में उत्तर इस प्रकार है-

प्राणातिपाताद् विरताः शीलवन्तो दयान्विताः।
तुल्य द्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः॥

जो किसी के भी प्राणों की हत्या से दूर रहते हैं तथा जो सुशील और दयालु हैं, वे कर्म के बन्धनों में नहीं पड़ते। जिनके लिए शत्रु और प्रिय मित्र दोनों समान हैं, वे जितेन्द्रिय पुरुष ही कर्मों के बन्धन से मुक्त होते हैं।

महाभारत के १३/१४४/७ में उक्त है -

वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषा कर्मबन्धनैः।
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किंचन॥

मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी की हिंसा नहीं करने वाले वीतराग, राग आदि मनोविकार से रहित पुरुष ही कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।

प्राणिमात्र को अभयदाता एवं प्राणियों के मित्र व्यक्ति ही ब्रह्मलोक का अधिकारी है।

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा नैष्कर्म्यमाचरेत्।
सर्वभूतसुखो मैत्रः सर्वेन्द्रिय यतो मुनिः॥

वानप्रस्थ के अनंतर सम्पूर्ण भूतों को अभयदान देकर कर्मत्याग रूप संन्यास धर्म का पालन करे। सब प्राणियों के सुख में सुख माने। सबके साथ मित्रता रखे। समस्त इन्द्रियों का संयम और मुनिवृत्ति का पालन करे।

मनुस्मृति के ६/३९ में उक्त है-

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥

जो सब स्थावर-जंगम प्राणियों के लिए अभय देकर गृह से संन्यास ले लेता है, उस ब्रह्मज्ञानी के तेजोमय लोक ब्रह्मलोक आदि होते हैं। अर्थात् वह उन लोकों को प्राप्त करता है। महाभारत के ११/७/२५ में उक्त है -

अभयं सर्वाभूतेभ्यो यो ददाति महीपते।
स गच्छति परं स्थानं विष्णोः पदमनामयम्॥

जो सम्पूर्ण प्राणियों को अभयदान देता है, वह भगवान विष्णु के अविनाशी परमधाम में चला जाता है।

महाभारत के १२/२९८/४ में कथित है-

छित्वाऽधर्ममयं पाशं यदा धर्मेऽभिरज्यते।
दत्त्वाऽभयकृतं दानं तदा सिद्धिमवाप्नुते॥

जो मनुष्य जब अधर्ममय बन्धन का उच्छेद करके धर्म से अनुरक्त हो जाता है और सम्पूर्ण प्राणियों को अभयदान कर देता है, उसे उसी समय उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में ४/४/२५ में उक्त है-

अभयं वै ब्रह्म।

अभय ही ब्रह्म है, अर्थात् अभय हो जाना ही ब्रह्मपद पाना है।

महाभारत के १२/२६२/१७ में उक्त है -

योऽभयः सर्वभूतानां स प्राप्नोत्यभयं पदम्।

जो अभय प्रदान करता है वही निर्भय पद को प्राप्त होता है।

अहिंसा प्रधान भारतीय संस्कृति में यज्ञ अनुष्ठान को प्रधान स्थान प्राप्त है। पशु हिंसा यज्ञीय विधान का अंग हो ही नहीं सकती। अज्ञान अथवा अज्ञान ज़नित भ्रान्ति के कारण पशु हिंसा का कालान्तर में यज्ञीय विधान से जोड़ने का प्रयास हुआ। किन्तु वह पूर्ण रूप से असफल हुआ। जिन्होंने इसका प्रयास किया, उनकी अधोगति हुई।

यज्ञ हो या श्राद्ध आदि पितृ यज्ञ हो, जीव हिंसा सर्वतोभावेन वर्जित है। इसी प्रकार मांस भक्षण या मांस दान आदि भी सर्वथा वर्जित है।

इस विषय में शास्त्रीय प्रमाण इस प्रकार है -

महाभारत के १३/११५/४९-५१ में उक्त है -

श्रूयते हि पुरा कल्पं नृणां ब्रीहिमयः पशुः।
येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः॥
ऋषिभिः संशयं पृष्टो वसुश्चेदिपतिपुरा।
अभक्ष्यमपि मांसं यः प्राह भक्ष्यमिति प्रभो॥
आकाशादवनिं प्राप्तस्ततः स पृथिवीपतिः।
एतदेव पुनश्चोक्त्वा विवेश धरणीतलम्॥

सुना है - पूर्वकाल में मनुष्यों के यज्ञ में पुरोडाश आदि के रूप में अन्नमय पशु का ही उपयोग होता था। पुण्य लोक की प्राप्ति के साधनों में लगे रहने वाले याज्ञिक पुरुष उस अन्न के द्वारा ही यज्ञ करते थे। प्राचीनकाल में ऋषियों ने चेदिराज वसु से अपना सन्देह पूछा था। उस समय वसु ने मांस को भी, जो सर्वथा अभक्ष्य है उसे भक्ष्य बता दिया था। उस समय आकाशचारी राजा वसु अनुचित निर्णय देने के कारण आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़े थे। बाद में पृथ्वी पर भी यही निर्णय देने के कारण वे पाताल में समा गए थे।

महाभारत के ६/३/५४ में उक्त है -

न वधः पूज्यते वेदे, हितं नैव कथञ्चन।

वेद में हिंसा की प्रशंसा नहीं की गई है। हिंसा से किसी प्रकार का हित-कल्याण भी नहीं हो सकता है।

श्रीमद्‌भागवत महापुराण के ५/२६/३१-३२ में उक्त है -

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून् खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनावदायासृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषादाः॥

ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैरुपसृतानुविश्रम्भय्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां चाभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेत-स्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति॥

इस लोक में जो पुरुष नरमेधादि यज्ञ के द्वारा यजन करते, तथा जो स्त्रियाँ पुरुष पशुओं को खाती हैं उन्हें पशु के समान वे सारे पुरुष यमलोक में राक्षस बनकर विविध प्रकार यातनाएँ देते हैं और व्याधों की तरह - अपने शस्त्रों से काटकर उनका लहू पीते हैं। जैसे वे मनुष्य भोजी पुरुष इस लोक में उसका मांस खाकर आनन्दित होते थे, वैसे ही वे रक्त पीते और आनन्दित होकर नाचते गाते हैं। जो पुरुष इस लोक में वन या गाँव के निरपराध जीवों को, जो अपने प्राणों की रक्षा चाहते हैं। अनेक उपायों से विश्वास दिला तथा अपने पास आने पर धोखे से पकड़कर काँटे या सूत्रादि में पिरोकर खेल करते हुए सताते हैं, वे भी मरने पर यम यातनाओं के समय शूल से बींधे जाते हैं तथा भूख-प्यास से व्याकुल तथा कंक, बट आदि तीखी चोंच के पक्षियों के द्वारा नोचे जाने पर, वे अपने पुराने पापों का स्मरण करते हैं।

महाभारत के १२/३३७/६-११ में उक्त है-

तेषां सवंदतामेव ऋषीणां विवुधैः सह।
मार्गागतो नृप श्रेष्ठस्तं देशं प्राप्तवान् वसुः॥

अन्तरिक्षचरः श्रीमान् समग्रबलवाहनः।
तं दृष्ट्वा सहसायान्तं वसुं ते त्वन्तरिक्षगम्॥
ऊचुर्द्विजातयो देवानेष छेत्स्यति संशयम्।
यज्जा दानपतिः श्रेष्ठः सर्वभूतहितप्रियः॥
कथंस्विदन्यथा ब्रूयादेष वाक्यं महान् वसुः।
एवं ते संविदं कृत्वा विवुधा ऋषयस्तथा॥
अपृच्छन् सहिताभ्येत्य वसुं राजानमन्तिकात्।
भो राजन् केन यष्टव्यमजेनाहोस्विदौषधैः॥
एतन्नः संशयं छिन्धि प्रमाण नो भवान् मतः॥

इस प्रकार जब ऋषियों का देवताओं के साथ सम्वाद चल रहा था, उसी समय नृपश्रेष्ठ वसु भी उस मार्ग से आ निकले और उस स्थान पर पहुँच गए। श्रीमान् राजा उपरिचर वसु अपनी सेना और वाहनों के साथ आकाश मार्ग से चलते थे। उन अन्तरिक्षचारी वसु को सहसा आते देख ब्रह्मर्षियों ने देवताओं से कहा – ये नरेश हम लोगों के सन्देह दूर कर देंगे, क्योंकि ये यज्ञ करने वाले, दानपति, श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण भूतों के हितैषी एवं प्रिय हैं। ये महान् पुरुष वसु शास्त्र के विपरीत वचन कैसे कह सकते हैं? ऐसी सम्मति करके देवताओं और ऋषियों ने एक साथ राजा वसु केपास आकर अपना प्रश्न उपस्थित किया। राजन्! किसके द्वारा यज्ञ करना चाहिए? बकरे के द्वारा अथवा अन्न के द्वारा? हमारे इस सन्देह का आप निवारण करें। हम लोगों की राय में आप ही प्रमाणिक व्यक्ति हैं।

महाभारत के १२/३३७/११-१४ में उक्त है-

स तान् कृताञ्जलिर्भूत्वा परिपप्रच्छ वै वसुः।
कस्य वै को मतः कामो ब्रूत सत्यं द्विजोत्तमः॥
धान्यैर्यष्टेव्यमित्येव पक्षोऽस्माकं नराधिपः।
देवानां तु पशुः पक्षो मतो राजन् वदस्व नः॥
देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसूनां पक्ष संश्रयात्।
छागेनाजेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदा॥

तब राजा वसु ने हाथ जोड़कर उन सबसे पूछा-विप्रवरों! आप लोग सच-सच बताइए, आप लोगों में से किस पक्ष को कौन सा मत अभीष्ट है? कौन अज का अर्थ बकरा मानता है और कौन अन्न? ऋषियों ने कहा-हम लोगों का पक्ष यह है कि अन्न से यज्ञ करना चाहिए तथा देवताओं का पक्ष यह है कि छाग नामक पशु के द्वारा यज्ञ होना चाहिए। राजन्! आप हमें अपना निर्णय बताइए। देवताओं का मत जानकर राजा वसु ने उन्हीं का पक्ष लेकर कह दिया कि - अज का अर्थ है - छाग बकरा, अत: उसी के द्वारा यज्ञ करना चाहिए।

महाभारत १२/३३७/१४-१७ में उक्त है -

कुपितास्ते तत सर्वे मुनयः सूर्यवर्चसः।
ऊचुर्वसुं विमानस्थं देवपक्षार्थवादिनम्॥
सुरपक्षो गृहीतस्ते यस्मात्तस्माद् दिवोऽपतत्।
अद्य प्रभृति ते राजन्नाकाशे विहता गतिः।
अस्माच्छापाभिपातेन महीं भित्वा प्रवेक्ष्यसि॥
विरुद्धं वेदसूत्राणामुक्तं यदि मते नृप।
वयं विरुद्ध वचना यदि तत्र पतामहे॥
ततस्तस्मिन् मुहूर्त्तेऽथ राजोपरिचरस्तदा।
अधौ वै सम्बभूवाशु भूमे र्विवरगो नृप॥

यह सुनकर वे सभी सूर्य के समान तेजस्वी ऋषि कुपित हो उठे और विमान पर बैठकर देवपक्ष की बात कहने वाले वसु से बोले, तुमने यह जानकर भी कि "अज" का अर्थ अन्न है, देवताओं का पक्ष लिया है। इसलिए स्वर्ग से नीचे गिर जाओ। आज से आकाश में विचरने की तुम्हारी शक्ति नष्ट हो गयी। हमारे शाप के आघात से तुम पृथ्वी का भेदकर पाताल में प्रवेश करोगे। तुमने यदि वेद और सूत्रों के विरुद्ध कहा हो तो हमारा यह शाप अवश्य लागू हो और यदि हम शास्त्रविरुद्ध वचन कहते हैं तो हमारा पतन हो जाय। ऋषियों के इतना कहते ही उसी समय राजा उपरिचर आकाश से नीचे आ गए और तत्काल पृथ्वी के विवर में प्रवेश कर गए।

असत्य निर्णय देने के कारण चेदिराज वसु को रसातन में जाना पड़ा।

मत्स्यपुराण के १४३/२९-३० में उक्त है-

तस्मान्न हिंसा यज्ञे स्याद् यदुक्तमृषिभिःपुरा।
ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवं गताः।
तस्मान्न हिंसा यज्ञं च प्रशसन्ति महर्षयः॥

सूत जी के उक्त कथा के आधार पर निष्कर्ष यह निकलता है कि पूर्वकाल में जैसा ऋषियों ने कहा है, उसके अनुसार यज्ञ में जीव हिंसा नहीं होनी चाहिए। हजारों करोड़ ऋषि अपने तपो बल से स्वर्ग लोक को गए हैं। इसी कारण महर्षिगण हिंसात्मक यज्ञ की प्रशंसा नहीं करते।

श्राद्ध में हिंसा व मांस दान वर्जित हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण के ७/१५/७-८ में उक्त है-

न दद्यादामिषं श्राद्धे नाचाद्याद्धर्मतत्त्ववित्।
मुन्यन्नैः स्यात् परा प्रीति र्यथा न पशुहिंसया॥
नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम्।
न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः॥

धर्म के तात्पर्य को जानने वाला व्यक्ति श्राद्ध में खाने के लिए मांस न दे और न स्वयं ही खाय। क्योंकि पितृगण की तृप्ति मुनि जनोचित आहार से ही होती है, पशु हिंसा से नहीं होती। सद्धर्म की इच्छा वाले व्यक्तियों के लिए सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति मन, वाणी और शरीर से दण्ड हिंसा का त्याग कर देना-इसके समान और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है।

नारदीय पुराण १/२४/१४-१६ में उक्त है-

मधुपर्के पशोर्वधः -
मांसादनं तथाश्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा।
एतान धर्मान् कलियुगे वर्ज्जनाहुर्मनीषिणः॥

मनीषियों ने कलियुग में कुछ धार्मिक क्रियाओं को वर्जनीय माना है। १. मधुपर्क अतिथि व दूल्हे के स्वागतार्थ की जाने वाली धार्मिक क्रिया में पशुवध करना, २. श्राद्ध में मांस भक्षण और वानप्रस्थाश्रम आदि।

प्रजापालन रूप राजधर्म में भी अहिंसा का प्रधान स्थान है। राजा या शासक वर्ग का प्रधान कार्य प्रजारक्षण होता है। देश या प्रजा के अहितकारी तत्त्वों का विनाश करना और प्रजा व देश का सर्वविध कल्याण करना - ये दोनों कार्य 'प्रजारक्षण' के साथ जुड़े हुए होते हैं। दुष्टों का दमन आदि कुछ कार्यों को छोड़कर राजा को अहिंसक रूप धारण करना चाहिए। यथाशक्ति उसे हिंसा या उग्ररूप कठोरता से वचना चाहिए। हिंसा के ताण्डव नृत्य को समाप्त करने के लिए ही तो 'राजा' पद की उद्भावना प्राचीनकाल में हुई है। अमर्य्यादादि स्थिति का नियन्त्रक ही राजा है। महाभारत के १२/६८/११-१४ में उक्त है -

यथा ह्यनुदकेमत्स्या निराक्रन्दे विहङ्गमाः।
विहरेयुर्यथाकामं विहिंसन्तः पुनः पुनः॥
विमथ्यातिक्रमेरंश्च विषस्यादि परस्परम्।
अभावमचिरेणैव गच्छेयुर्नात्र संशयः॥
एवमेव बिना राज्ञा विनश्येयुरिमाः प्रजाः।
अन्धे तमसि मज्जयुरगोपाः पशवो यथा॥
हरेयुर्बलवन्तोऽपि दुर्बलानां परिग्रहान्।
हन्युर्वा यच्छमानांश्च यदि राजा न पालयेत्॥

सूर्य और चन्द्रमा का उदय न होने पर जैसे समस्त प्राणी घोर अन्धकार में डूब जाते हैं और एकदूसरे को देख नहीं पाते हैं जैसे थोड़े जल वाले तालाब में मत्स्यगण तथा रक्षक रहित उपवन में पक्षियों के झुण्ड परस्पर एक-दूसरे पर बारम्बार चोट करते हुए इच्छानुसार विचरण करते हैं, वे कभी तो अपने प्रहार से दूसरों को कुचलते और मथते हुए आगे बढ़ जाते हैं और कभी स्वयं दूसरे की चोट खाकर व्याकुल हो उठते हैं, इस प्रकार राजा के बिना सारी प्रजाएँ आपस में लड़-झगड़कर बात की बात में नष्ट हो जायेंगी और बिना चरवाहे के पशुओं की भाँति दुःख के घोर अन्धकार में डूब जायेंगी। यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे तो बलवान् मनुष्य दुर्बलों की बहू-बेटियों को हर ले जाय और अपने घर-बार की रक्षा के लिए प्रयत्न करने वालों को मार डालें।

महाभारत के १२/६८/३३ में उक्त है-

धर्ममेव प्रपद्यन्ते न हिंसन्ति परस्परम्।
अनुगृह्णन्ति चान्योन्यं यदा रक्षति भूमिपः॥

जब राजा रक्षा करता है तब सब वर्णों के लोक नाना प्रकार से बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं और मनोयोगपूर्वक विद्याध्ययन में लगे रहते हैं।

राजा के लिए अपेक्षित यह है कि वह अहिंसक व दयालु स्वभाव का हो।

शुक्रनीति १/१५९ में उक्त है-

आनृशंस्यं परो धर्मः सर्वप्राणभृतां यतः।
तस्माद्राजाऽनृशंस्येन पालयेत् कृपणं जनम्॥

सभी प्राणियों के प्रति क्रूरता न करना अर्थात् दया करना ही परम धर्म है। अतः राजा क्रूरता छोड़कर दया भाव के साथ ही दीन और निःसहाय जन का पालन करे।

महाभारत के १२/५६/३६ में उक्त है-

तस्मान्नित्यं दया कार्या चातुर्वर्ण्ये विपश्चिता।
धर्मात्मा सत्यवाक् चैव राजा रञ्जयति प्रजाः॥

विद्वान्, राजा को चारों वर्णों पर सदा दया करनी चाहिए। धर्मात्मा और सत्यवादी राजा ही प्रजा को प्रसन्न रख पाता है।

अग्निपुराण के २२३/७ में उक्त है -

राष्ट्रपीड़ाकरो राजा नरके वसते चिरम्॥

राष्ट्र को पीड़ा पहुँचाने वाला राजा चिरकाल तक नरक में निवास करता है।

आदर्श अहिंसक राज्य का नाम ही रामराज्य है।

वाल्मीकि रामायण के ६/१२८/१०० में लिखित है -

सर्वे मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत्।
राममेवानुपश्यन्ती नाभ्यहिंसन् परस्परम्॥

सब लोग सदा प्रसन्न ही रहते थे। सभी धर्मपरायण थे और श्रीराम के आदर्श स्वरूप को ही बारम्बार दृष्टि में रखते हुए, वे सभी एक-दूसरे की हिंसा नहीं करते थे अर्थात् परस्पर हिंसक व्यवहार नहीं करते थे।

प्राणि वधरूप हिंसा सामान्यतः वर्जित है।

महाभारत के १२/२६७/११-१३ में उक्त है-

असाधुश्चैव पुरुषो लभते शीलमेकदा।
साधोश्चापि ह्यसाधुभ्यः शोभना जायते प्रजा॥
न मूलघातः कर्त्तव्यो नैष धर्मः सनातनः।
अपि स्वल्पवधेनैव प्रायश्चित्तं विधीयते॥
उद्वेजनेन बन्धेन विरूपकरणेन च।
बधदण्डेन ते क्लिश्या न पुरोहित संसदि॥

दुष्ट पुरुष भी कभी साधु सङ्ग में सुधर कर सुशील बना जाता है तथा बहुत से दुष्ट पुरुषों की सन्तानें भी अच्छी निकल जाती हैं। इसलिए दुष्टों को प्राणदण्ड देकर उनका मूलोच्छेद नहीं करना चाहिए। किसी की जड़ उखाड़ना सनातन धर्म नहीं है। अपराध के अनुरूप साधारण दण्ड देना चाहिए, उसी से अपराधी के पापों का प्रायश्चित हो जाता है। अपराधी को उसका सर्वस्व छीन लेने का भय दिखाया जाय अथवा उसे कैद कर लिया जाय या उसके किसी अंग को भंग करके उसे कुरूप बना दिया जाय परन्तु प्राणदण्ड देकर उनके कुटुम्बियों को क्लेश पहुँचाना उचित नहीं है। इसी तरह यदि वे पुरोहित ब्राह्मण की शरण में जा चुके हों तो भी राजा उन्हें दण्ड न दे।

मनुस्मृति के ८/१२९ में उक्त है -

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद् धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम्॥

अपराध करने पर राजा मुनियों को प्रथम वाग्दण्ड (वाणी से डांटना आदि), उसके बाद दूसरी बार अपराध करने पर धिग्दण्ड (धिक्कारना आदि), तीसरी बार आर्थिक दण्ड (जुर्माना) और इसके बाद वधदण्ड। अपराध के अनुसार शरीर ताड़न अर्थात् कोड़े या वैत से मारकर या अधिक

गम्भीर अपराध में ही यदि उक्त दण्डों से न सुधर पाये तो अंगच्छेद आदि या प्राणदण्ड से दण्डित करे।

कर ग्रहण में भी राजा को अहिंसक वृत्ति को अपनाना चाहिए।

महाभारत के १२/७१/२० में लिखित है-

मालाकारोपमो राजन् भवमाऽऽआङ्गिरिकोपमः।
तथा युक्तश्चिरं राज्यं भोक्तुं शक्ष्यसि पालयन्॥

भीष्मजी युधिष्ठिर को कहे थे-महाभारत १२/७१/२०

तुम माली के समान बनो। कोयला बनाने वाले के समान न बनो। जैसे माली वृक्ष की जड़ को सींचता और उसकी रक्षा करता है तब फल-मूल ग्रहण करता है, परन्तु कोयला बनाने वाला वृक्ष को समूल नष्ट कर देता है। उस प्रकार माली बनकर राज्यरूपी उद्यान को सींचकर सुरक्षित रखना चाहिए। और फल-फूल की तरह प्रजा से न्यायोचित कर लेते रहना चाहिए। कोयला बनाने वाले की तरह सारे राज्य को जलाकर भस्म नहीं करना चाहिए। ऐसा करके प्रजा-पालन में तत्पर रहकर तुम दीर्घकाल तक राज्य का उपभोग कर सकोगे।

महाभारत के २/६९/२३-२४ में लिखित है -

वर्जनीयं सदा युद्धं राज्यकामेन धीमता।
उपायैस्त्रिभिरादानमर्थस्याह वृहस्पतिः॥
सान्त्वेन तु प्रदानेन भेदेन च नराधिपः।
यदर्थे शक्नुयात् प्राप्तुं तेन तुष्येत पण्डितः॥

जो बुद्धिमान राजा राज्य का हित चाहे, उसे सदा युद्ध को टालने का ही प्रयत्न करना चाहिए। बृहस्पति जी ने साम, दान और भेद इन तीन उपायों से ही राजा के लिए धन की आय बतायी है। इन उपायों से जो धन प्राप्त किया जा सके, उसी से विद्वान् राजा को सन्तुष्ट होना चाहिए।

महाभारत के ६/३/८१ में कथित है -

उपाय विजयं श्रेष्ठ माहुर्भेदेन मध्यमम्।
जघन्य एष विजयो यो युद्धेन विशाम्पते॥

सामदामरूप उपायों से जो विजय प्राप्त होता है उसे श्रेष्ठ बताया गया है। भेदनीति के द्वारा शत्रु सेना में फूट डालकर जो विजय प्राप्त की जाती है वह मध्यम है। तथा युद्ध के द्वारा मारकाट मचाकर जो शत्रु को पराजित किया जाता है, वह सबसे निम्न श्रेणी की विजय कही गई है।

भयावह परिणाम हिंसक युद्ध का होता है। इसका उदाहरण महाभारत के ५/७२/५१ में है -

एको ह्यपि बहून् हन्ति घ्नन्त्येके बहवोऽप्युत।
शूरं कापुरुषो हन्ति अयशस्वी यशश्विनम्॥

युद्ध में एक योद्धा भी बहुत से सैनिकों का संहार करता है तथा बहुत-से योद्धा मिलकर एक को ही मार देते हैं। कभी कायर शूरवीर को मार देता है और कभी अयशस्वी पुरुष यशस्वी वीर को पराजित कर देता है।

शतपथ ब्राह्मण के १/२/५/१९ में उक्त है-

संग्रामो वै क्रूरम्। संग्रामे हि क्रूरं क्रियते॥

युद्ध होता है, युद्ध में क्रूर काम किए जाते हैं।

हिंसक युद्ध का विद्वेष पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है।

महाभारत में इसका वर्णन है - ५/७२/६० -

जातवैरस्य पुरुषो दुःखं स्वपिति नित्यदा।
अनिवृत्तेन मनसा ससर्प इव वेश्मनि॥

किसी से वैर करने वाला पुरुष उद्विग्न चित्त होकर सदा उसी तरह दुःख की नींद सोता है, जैसे सर्पों से भरे घर में रहने वाला व्यक्ति।

राजा का परम कर्तव्य है - दया एवं दान करना।

महाभारत के १३/६०/६ में उक्त है -

आनृशंस्यं परो धर्मो याचते यत् प्रदीयते।
अयाचतः सीदमानान् सर्वोपायैर्निमन्त्रयेत्॥

याचक को जो दान दिया जाता है वह दया रूप परम धर्म है। परन्तु जो लोग क्लेश उठाकर भी याचना नहीं करते, उन ब्राह्मणों को प्रत्येक उपाय

से अपने पास बुलाकर दान देना चाहिए।

शासक का कर्त्तव्य है कि वह दया दान के द्वारा निर्धन, विधवा, अनाथ की सहायता करे।

शुक्रनीति में वर्णित है - ३/१०/११-

अवृत्तिव्याधि शोकार्त्तानुवर्त्तते शक्तितः।
आत्मवत् सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकाम्॥

जीविका से रहित तथा व्याधि या शोक से आर्त्त लोकों को राजा यथाशक्ति सहायता करे एवं कीड़े तथा चींटियों तक के भी सुख दुःखादि को अपनी ही तरह समझे।

यजुर्वेद के ११/३६ में उक्त है -

सहस्त्रम्भरः शुचि जिह्व अग्निः।

समाज के अग्रणी नेता को पवित्र जीभ वाले अग्नि के समान हजारों का पालन-पोषण करने वाला होना चाहिए।

शुक्रनीति के ३/१२५ में वर्णित है -

विकलाङ्गान् दीनानाथांश्च पालयेत्।

राजा को विकलाङ्ग सन्यासी, दीन और अनाथ लोकों का पालन करना चाहिए।

अहिंसक युद्ध ही धर्मयुद्ध है। अहिंसा धर्म प्रवर्त्तकों ने छलकपट, अमर्यादित क्रूरता आदि धर्म विरुद्ध उपायों से बचते हुए अहिंसक दृष्टि के साथ, एक सीमित मर्यादा में युद्ध करने की अनुमति दी है। उक्त धर्मयुद्ध के मूल में मुख्य रूप से पाँच अहिंसात्मक नियम है -

१. कम से कम हिंसा हो तथा निरर्थक हिंसा न हो। २. छल-कपट आदि का प्रयोग न हो, नियम विरुद्ध कार्य न हों। ३. निहत्थे, युद्ध विमुख, युद्ध में सहायता करने वाले तथा निर्बल साधन वाले व्यक्ति पर प्रहार न करना। ४. परम्परा के हटकर असधारण अथवा अत्यधिक उग्र अस्त्रों के प्रयोग से बचना। ५. तथा दिन में युद्ध समाप्ति के बाद परस्पर प्रेम से रहना।

महाभारत के ६/१/२६-२७ में इसका वर्णन है -

ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः।
धर्मान् संस्थापयामासु युद्धानां भरतर्षभः॥

कौरव-पाण्डव तथा सोमकों ने परस्पर मिलकर युद्ध के सम्बन्ध में कुछ नियम बनाए। उन्होंने युद्ध-धर्म की मर्यादा स्थापित की।

महाभारत के १२/९५/७-९ में उक्त है -

नैवासन्नद्ध कवचो योद्धव्यः क्षत्रियो रणे।
एकएकेन वाच्यश्च विसृजेति क्षिपामि च॥
स चेत् सन्नद्ध आगच्छेत् सन्नद्धव्यं ततो भवेत्।
स चेत् ससैन्य आगच्छेत् ससैन्यस्तमयाह्वयेत्॥
स चेभि कृत्या युद्धयेत् निकृत्या प्रतियोध्येत्।
अथ चेत् धर्मतो युद्धयेत् धर्मेणैव निवारयेत्॥

जो कवच बाँधे हुए नहीं, उस क्षत्रिय के साथ रणभूमि में युद्ध नहीं करना चाहिए। एक योद्धा एकाकी योद्धा से ही कहे - तुम मुझ पर शस्त्र छोड़ो-मैं भी तुम पर प्रहार करता हूँ। यदि वह कवच बाँधकर सामने आए तो स्वयं भी कवच धारण कर ले। यदि विपक्षी सेना के साथ आवे तो स्वयं भी सेना के साथ उस शत्रु को ललकारे। यदि वह छल से युद्ध करे तो स्वयं भी उसी रीति से उसका सामना करे और यदि वह धर्म से युद्ध आरम्भ करे तो धर्म से ही स्वयं भी उसी रीति से उसका सामना करे।

महाभारत के ६/१/३२ में उक्त है -

न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रो पनायिषु।
न भेरी शङ्खवादेषु प्रहर्त्तव्यं कथञ्चन॥

घोड़ों के सेना के लिए नियुक्त हुए सूतों, बोझा ढोने वालों, शस्त्र पहुँचाने वालों तथा भेरी व शङ्ख बजाने वालों पर भी किसी प्रकार प्रहार न करे।

महाभारत के १०/६/२१-२२ में वर्णित है -

गोब्राह्मणनृपस्त्रीषु सख्युर्मातुर्गुरोस्तथा।
हीनप्राणजड़ान्धेषु सुप्तभीतोत्थितेषु च।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तेषु न शस्त्राणि पातयेत्॥

युद्ध में गो, ब्राह्मण, राजा, स्त्री, मित्र, माता, गुरु, दुर्बल, जड़, अन्धा, सोए हुए, मतवाले, उन्मत्त और असावधान पुरुषों पर मनुष्य शस्त्र न चलाये।

श्रीमद्भागवत महापुराण के १/७/३६ में उक्त है -

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जड़म्।
प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित्॥

मद्यादि से मत्त असावधान, ग्रहादि के आवेश से उन्मत्त, सोता हुआ बालक, स्त्री, निष्क्रिय, शरणागत, जिसका रथ टूट गया है और डरे हुए शत्रु को धर्मज्ञ पुरुष नहीं मारते।

महाभारत के १२/९८/४७, ४८ में लिखित है -

एतत् तपश्च पुण्यं च धर्मश्चैव सनातनः।
चत्वारश्चाश्रमास्तस्य यो युद्धमनुपालयेत्॥

जो युद्ध में धर्म का निरन्तर पालन करता है उसके लिए यही तपस्या, पुण्य, सनातन धर्म तथा चारों आश्रमों के नियमों का पालन है।

महाभारत के १२/९५/१६ में उक्त है -

कर्म चैतदसाधूनामसाधून् साधुना जयेत्।
धर्मेण निधनं श्रेयो न जयः पापकर्मणा।

छल-कपट का काम तो दुष्टों का काम है। श्रेष्ठ पुरुष को तो दुष्टों पर भी धर्म से ही विजय पानी चाहिए। धर्मपूर्वक युद्ध करते हुए मर जाना भी अच्छा है परन्तु पापकर्म के द्वारा विजय पाना अच्छा नहीं है।

नमोऽकिञ्चनवित्ताय पुरुषाय महात्मने।
यस्य फेलालवेनापि पूरिता पुस्तिका शुभा॥

❖

श्रीहरिदास शास्त्री सम्पादिता ग्रन्थावली

क्रम सद्ग्रन्थ	मूल्य
१-वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	१५०.००
२-श्रीनृसिंह चतुर्दशी	१०.००
३-श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	२०.००
४-श्रीगौरगोविन्दार्चनपद्धति	२०.००
५-श्रीराधाकृष्णार्चनदीपिका	२०.००
६-७-८-श्रीगोविन्दलीलामृतम्	४५०.००
९-ऐश्वर्यकादम्बिनी	३०.००
१०-श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	३०.००
११-१२-चतुःश्लोकीभाष्यम्, श्रीकृष्णभजनामृत	३०.००
१३-प्रेम सम्पुट	४०.००
१४-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
१५-ब्रजरीतिचिन्तामणि	४०.००
१६-श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	३०.००
१७-श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	५०.००
१८-श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	५.००
१९-श्रीहरिभक्तिसारसंग्रह	५०.००
२०-धर्मसंग्रह	५०.००
२१-श्रीचैतन्यसूक्तिसुधाकर	१०.००
२२-श्रीनामामृतसमुद्र	१०.००
२३-सनत्कुमारसंहिता	२०.००
२४-श्रुतिस्तुति व्याख्या	१००.००
२५-रासप्रबन्ध	३०.००
२६-दिनचन्द्रिका	२०.००
२७-श्रीसाधनदीपिका	६०.००
२८-स्वकीयात्वनिरास, परकीयात्वनिरूपणम्	१००.००
२९-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
३०-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	१००.००
३१-श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्	३०.००
३२-श्रीगौरांग चन्द्रोदय	३०.००

३३-श्रीब्रह्मसंहिता	५०.००
३४-भक्तिचन्द्रिका	३०.००
३५-प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	५०.००
३६-वेदान्तस्यमन्तक	४०.००
३७-तत्वसन्दर्भः	१००.००
३८-भगवत्सन्दर्भः	१५०.००
३६-परमात्मसन्दर्भः	२००.००
४०-कृष्णसन्दर्भः	२५०.००
४१-भक्तिसन्दर्भः	३००.००
४२-प्रीतिसन्दर्भः	३००.००
४३-दशःश्लोकी भाष्यम्	६०.००
४४-भक्तिरसामृतशेष	१००.००
४५-श्रीचैतन्यभागवत	२००.००
४६-श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	१५०.००
४७-श्रीचैतन्यमंगल	१५०.००
४८-श्रीगौरांगविरुदावली	४०.००
४६-श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत	१५०.००
५०-सत्संगम्	५०.००
५१-नित्यकृत्यप्रकरणम्	५०.००
५२-श्रीमद्‌भागवत प्रथम श्लोक	३०.००
५३-श्रीगायत्री व्याख्याविवृतिः	१०.००
५४-श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	२५०.००
५५-श्रीकृष्णजन्मतिथिविधिः	३०.००
५६-५७-५८-श्रीहरिभक्तिविलासः	६००.००
५६-काव्यकौस्तुभः	१००.००
६०-श्रीचैतन्यचरितामृत	२५०.००
६१-अलंकारकौस्तुभ	२५०.००
६२-श्रीगौरांगलीलामृतम्	३०.००
६३-शिक्षाष्टकम्	१०.००
६४-संक्षेप श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	८०.००
६५-प्रयुक्ताख्यात मंजरी	२०.००

६६-छन्दो कौस्तुभ	५०.००
६७-हिन्दुधर्मरहस्यम् वा सर्वधर्मसमन्वयः	५०.००
६८-साहित्य कौमुदी	१००.००
६९-गोसेवा	४०.००
७०-गोसेवा (गोमांसादि भक्षण विधि-निषेध विवेचन)	५०.००
७१-पवित्र गो	५०.००
७२-रस विवेचनम्	५०.००
७३-मन्त्र भागवत	
७४-अहिंसा परमो धर्मः	

बंगाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

१-श्रीबलभद्रसहस्रनाम स्तोत्रम्	१०.००
२-दुर्लभसार	१०.००
३-साधकोल्लास	५०.००
४-भक्तिचन्द्रिका	४०.००
५-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
६-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	३०.००
७-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
८-भक्तिसर्वस्व	३०.००
९-मनःशिक्षा	३०.००
१०-पदावली	३०.००
११-साधनामृतचन्द्रिका	४०.००
१२-भक्तिसंगीतलहरी	२०.००

अंग्रेजी भाषा में मुद्रित ग्रन्थ

१-पद्यावली (Padyavali)	२००.००
२-गोसेवा (Goseva)	५०.००
३-The Pavitra Go	८०.००
४-A Review of 'Beef in Ancient India'	२००.००
५-Scriptural Prohibitions on meat-eating	१००.००

अन्य भाषाओं में मुद्रित ग्रन्थ

१. The Pavitra Go	(Spanish)
२. Goseva & The Pavitra Go	(Italian)

❖
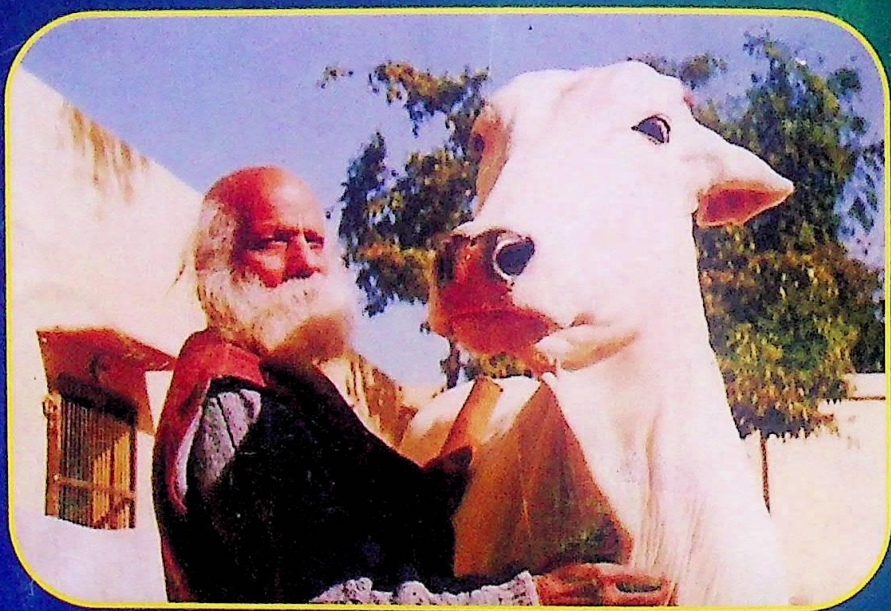
तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिल जन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति॥

(श्रीमद्भागवत ४/११/१३)

सभी प्राणियों के प्रति सहनशीलता, दया, मित्रता और समता का भाव रखने वाले पर सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं।